जो बोले सो अभय—

वैदिक धर्म की जय

मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि

बोले सो अभय—

वैदिक धर्म की जय

[विविध आर्य सिद्धान्तों का संवाद रूप में प्रतिपादन]

लेखक—

मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि

आर्योपदेशक,

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर।

सम्पादक—

प्रियव्रत वेदवाचस्पति

अध्यक्ष, श्री चमूपति साहित्य विभाग

गुरुदत्त भवन, लाहौर।

प्रथमावृत्ति १०००] सम्वत् १९९८ [मूल्य १॥)

प्रकाशक—
प्रियव्रत वेदवाचस्पति
अध्यक्ष-श्री चमूपति साहित्य-
विभाग गुरुदत्त भवन,
लाहौर

मुद्रक—
श्री प्रकाशचन्द,
दी आर्य प्रेस लिमिटेड,
१७ मोहनलाल रोड,
लाहौर।

नम्र निवेदन

इस पुस्तक में सर्वसाधारण के ज्ञान-लाभार्थ उन सत्य, सनातन, वैदिक धर्म के प्रमुख तथा विवादास्पद विषयों का संवाद रूप में विशद वर्णन करने का यत्न किया गया है जिनके सम्बन्ध मे परिचिति का होना आवश्यक माना जाना है। इसीलिये हमने इसको लिखने में उस अतिसरल पद्धति का अनुसरण किया है जिसके द्वारा पारस्परिक वार्तालाप की भांति अति गंभीर विषयों का सुगमता से बोध हो सके। आशा है आर्य जनता इस पुस्तक से यथोचित लाभ उठाकर हमारे इस तुच्छ प्रयत्न को सफल करेगी।

अन्त मे विद्वद्वर आचार्य श्री पण्डित प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति, अध्यक्ष चमूपति साहित्य विभाग, और आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त भवन, लाहौर का इस पुस्तक की भूमिका लिख देने के लिये हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

विनीत—

मुनीश्वरदेव सिद्धान्त शिरोमणि

ग्रन्थ लेखक के श्वसुर

प्रसिद्ध आर्य दानवीर श्री प० पन्नाराम शर्मा

सुजानगढ, राज्य बीकानेर

आपने ही प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशनार्थ

समस्त व्यय राशि प्रदान की है

समर्पण

यह प्रस्तुत पुस्तक मैंने अपनी धर्मशीला
धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती विमलादेवी
शर्मा 'रत' की अन्तिम सु-कामना-
नुसार लिखी है। अतः उन्हीं
की दिवंगत आत्मा को सप्रेम
समर्पित करता हूं।

—मुनीश्वर देव

भूमिका

श्री पण्डित मुनीश्वर देव जी सिद्धान्त शिरोमणि आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, के एक सुयोग्य उपदेशक हैं। आपके व्याख्यान आर्य समाजो मे बडी रुचि से सुने जाते हैं। आर्य समाज के धार्मिक सिद्धान्तों का आपका ज्ञान बडा सुलझा हुआ है। आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रतिपादन मे सारगर्भित व्याख्यान तो अब तक पंजाब की आर्य जनता ने पण्डित जी के अनेक सुने हैं। परन्तु अभी तक पण्डित जी की कोई पुस्तक जनता के सामने नहीं आई थी। "जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय" इस पुस्तक द्वारा अब पण्डित जी आर्य सिद्धान्तो पर लिखने वाले एक लेखक के रूप मे भी आर्य जनता के आगे आरहे हैं। आर्य सिद्धान्तो पर इससे पहले भी अनेक लेखको द्वारा अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। परन्तु पण्डित मुनीश्वर देव जी की इस पुस्तक मे अपनी एक विशेषता है। पण्डित जी ने इस पुस्तक को सवाद के रूप में लिखा है। सवाद या वार्तालाप की रीति में रोचकता रहती है। इस रीति में पाठक उकताता नहीं। कठिन विषय भी सरलता से समझाये जा सकते हैं। वार्तालाप का आश्रय लेकर लिखी जाने के कारण पण्डित जी की पुस्तक स्त्रियों और अपेक्षा-कृत कम शिक्षित साधारण जनता के लिये भी उपयोगी हो गई है। पण्डित जी ने इस पुस्तक में एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा निषेध, वेद का मनुष्यमात्र को अधिकार, वेद ईश्वरीय ज्ञान, आर्यसमाज और राम-कृष्ण, पुनर्जन्म, पुरुषार्थवाद, मुक्ति का स्वरूप, मुक्ति के साधन

मुक्ति से पुनरावृत्ति, गोमेध आदि का सच्चा अर्थ, नमस्ते पर विचार, हमारा नाम आर्य है, वर्णव्यवस्था, आर्य राजनीति, वेद और स्त्री जाति, विधवा विवाह, नियोग, मृतक दाह, आचार्य दयानन्द का वेदमत से प्रेम, आदि विषयों का युक्ति और प्रमाणों से विवेचन किया है। सर्वसाधारण जनता को आर्यसमाज के सिद्धान्तों का सुगम और सुबोध भाषा में परिचय प्राप्त करने में यह पुस्तक बहुत सहायक होगी।

प्रतिनिधि सभा के अधीन चमूपति साहित्य विभाग की ओर से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। पण्डित जी ने अपनी यह पुस्तक लिखकर सभा के साहित्य विभाग को दान कर दी है। इससे पण्डित जी की उदार हृदयता का परिचय मिलता है। इतना ही नहीं। कागज और छपाई की इस मंहगी के समय में पुस्तक की छपाई का सारा खर्च भी पण्डित जी ने अपने और अपने सबन्धियों से सभा को ले दिया है। यह पण्डित जी की और भी उदारता है। मैं इसके लिये सभा और चमूपति साहित्य विभाग की ओर से पण्डित मुनीश्वरदेव जी का हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

आशा है आर्य जनता पण्डित जी की इस उपयोगी पुस्तक को अपना कर उनके इस प्रथम प्रयत्न का उचित आदर करेगी।

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
अध्यक्ष, चमूपति
साहित्य विभाग

गुरुदत्त भवन, लाहौर
१।२।४२,

विषय-सूची

प्रथम-प्रकरण 1

वेदों का प्रकाशक ईश्वर—वेदों को सब पढ़ें—ईश्वर का स्वरूप—राम-कृष्ण के सम्बन्ध में आर्यों की स्थिति—अनेक देवतावाद का खण्डन—प्राकृतिक पदार्थों की पूजा का निषेध—ईश्वर के साथ हमारा माता-पिता आदि का सम्बन्ध है।

द्वितीय-प्रकरण २०

कौन कर्म कर्ता है—कौन फलदाता है—स्तुति प्रार्थनादि का फल—स्वयं फल भोगना असम्भव है—पाप प्रवर्त्तक कौन है—क्या कर्मफल बांटा जा सकता है ?—पुरुषार्थ और प्रारब्ध में कौन बड़ा है—क्या सुख दुःख पूर्व से ही निश्चित है।

तृतीय-प्रकरण ३२

क्या जन्म अनेक हैं ?—पूर्व जन्म की प्रतीति क्यों नहीं होती ?—आचार्य का विस्तृत मत—वेद और पुनर्जन्म—जीव का शरीरान्तर प्रवेश—मुक्ति का वेद में स्वरूप—मुक्ति के साधन—मुक्ति से पुनरावृत्ति।

चतुर्थ-प्रकरण ४६

मनुष्येतर प्राणियों से कैसे वर्तें—आर्यों की प्रार्थना—सर्व कल्याण के अर्थ—गाय आदि पशु मारने योग्य नहीं—घातक राजा से दण्ड पावें—यज्ञ में हिंसा का निषेध—गोमेध आदि का सत्यार्थ—मांसाहार मनुष्याहार नहीं—वैदिक धर्म में सदाचार-शिक्षा—आचार्य का विस्तृत उपदेश।

पंचम-प्रकरण ६५

क्या स्त्रियें पैर की जूती हैं ?—वेद और स्त्री जाति—हम

आर्य हैं—वेद सर्वोपरि धर्म पुस्तक—वेदानुकूल को मानो—मूर्ति-पूजा अनावश्यक है—वैदिक मूर्तिपूजा—जप किसका किस प्रकार करे—नाम स्मरण का ढग—गंगा स्नान से पाप न धुलेगा—व्रत क्या है—परस्पर मिलने के समय नमस्ते करना ही वैदिक रीति है।

षष्ठ-प्रकरण ९३

वर्ण व्यवस्था पर शंका समाधान—क्या पुराण ईश्वर कृत अथवा व्यास कृत हैं ?—क्या विधवा विवाह वेदोक्त है ?—नियोग भद्दा कर्म नहीं है—ईसाइयत-इस्लाम का दावा मिथ्या है—वैदिक धर्म ही तब्लीगी धर्म है—मुस्लिम शासन काल में तब्लीग।

सप्तम-प्रकरण १२२

वेद और राजनीति—आचार्य की स्वदेश भक्ति—पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य—गान्धी जी के पथ प्रदर्शक दयानन्द हैं—मृतक गाडने की रस्म सब से बुरी है—मृतक संस्कार पर आचार्य का तथा वेद का मत।

अष्टम-प्रकरण १३८

गृहस्थ-सुधार पर वेदोपदेश—ऋग्वेद के अन्तिम संगठन सूक्त का पाठ—आचार्य का वैदिक धर्म से अगाध प्रेम—अन्य मतावलम्बियों से सत्य मत ग्रहण के लिए प्रेरणा—आचार्य की परमात्मा से प्रार्थना—आचार्य की सब मत वालों से अपील।

नवम-प्रकरण १५३

आचार्य दयानन्द के सम्बन्ध में विभिन्न नेताओं और विद्वानों के उद्गार।

ओ३म्

जो बोले सो अभय—

वैदिकधर्म की जय

प्रथम प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम

समय—प्रातःकाल, ८ बजे

(आश्रमाध्यक्ष विमलानन्द सन्यासी ने आश्रम-सेवक भद्रसेन को बुला कर कहा—)

सन्यासी—क्यों भद्रसेन! तुम जानते हो कि उस सामने के चबूतरे पर कौन व्यक्ति दोनों समय आकर आसन जमाकर एक घण्टा भर चुप चाप बैठता है? मालुम होता है कि कोई आर्यसमाजी है।

सेवक—भगवन्! आप सत्य कहते हैं। वह आर्यसमाजी ही है। केवल आर्यसमाजी ही नहीं, प्रत्युत वह आर्यसमाज के प्रख्यात विद्वान् श्री पं० धर्मज्ञ जी हैं। वह नित्य सन्ध्या के लिए बैठते हैं।

सन्यासी—ऐं! आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान्! क्या तुम उन्हें अच्छी प्रकार जानते हो? क्या तुम्हारे साथ उनकी बात चीत है?

सेवक—आपकी दया से मै उनका हितपात्र हूँ। महाराज! मैं भी तो आर्यसमाजी हूँ। मेरी उनसे खुली बात चीत है।

सन्यासी—(मुस्कराकर) भाई! मैं आर्यसमाजियों से चिढ़ता तो नहीं, मैं तो उन्हे साधुशील समझता हूँ। इसी लिए कुछ विचार-विनिमय की अभिलाषा उत्पन्न हुई। इसी अभिलाषा-पूर्ति के लिए मै तुम से कुछ सहायता चाहता हूँ। आज सन्ध्या के बाद उनसे मेरी भेंट कराना। अच्छा! सुना!! भद्रसेन!!!

सेवक—(सिर झुकाकर) जैसी आपकी आज्ञा। (कहकर चला जाता है)

(ठीक समय पर नित्य की भांति पं० धर्मज्ञ जी स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर सन्ध्या में बैठे। सन्ध्या-समाधि के अवसर से पूर्व भद्रसेन चुपचाप जाकर पास बैठ जाता है। सन्ध्या समाधि पर पण्डित जी ने अति प्रेम से पूछा—)

पण्डित जी—भद्रसेन! कहो भाई! क्या बात है? कैसे बैठे हो? कुशल तो है?

सेवक—नमस्ते पण्डित जी! आपकी सब कृपा है। बात वास्तव मे यह है कि आश्रम के अध्यक्ष वह स्वामी जी हैं न, वह सामने बरामदे में बैठे हैं, सचमुच आपके नित्य नियमो से इतने प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं।

पण्डित जी—कैसे? (आश्चर्य से पूछा)

सेवक—पता नहीं, महाराज! आपके आने से पूर्व अभी उन्होंने आपसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की है। मैं चाहता हूँ कि आप अवश्य मेरे स्वामी की इच्छा पूर्ण करें।

पण्डित जी—अच्छा भाई! चलो। मुझे क्या इन्कार है। चलो उठो। (दोनों स्वामी जी की ओर चलते हैं। संन्यासी जी उन्हें आता देख टहलना आरम्भ कर देते हैं। अति निकट होकर दोनों सादर नमस्ते कहते हैं और सन्यासी जी सप्रेम नमस्ते लेकर—)

सन्यासी—मैं आपके दर्शन करके अति प्रसन्न हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं कुछ आप से विचार-परिवर्तन करूं। कहिये, कुछ समय निकाल सकते हैं?

पण्डित—महाराज! आप क्या कहते हैं। मै तो भगवन्! अपने जीवन को भाग्यशाली समझता हूँ कि आप सरीखे अनुभवी संन्यासी के साथ आज संलाप का सु-अवसर मिल रहा है। मैं आज से नित्यप्रति प्रातःकालीन सन्ध्या के अनन्तर दो घंटा आपकी सेवा मे समर्पित करता हूँ।

सन्यासी—(प्रसन्न वदन से) वाह! वाह!! आपका अति धन्यवाद। तो अच्छा, आप कृपया बतलावें कि आर्यों का कौन-सा धर्म है।

पण्डित—मैं समझा नहीं कि आपका धर्म-प्रश्न से क्या आशय है। क्या आप आर्यों का कर्त्तव्य पूछ रहे हैं या मत?

सन्यासी—हां, हां! मेरा भाव मत-प्रश्न से है। जैसे मुसल्मानों का इस्लाम, ईसाईयों का ईसायत, बौद्धों का बौद्ध, जैनियों का जैन और पौराणिकों का पौराणिक मत आदि हैं। इसी प्रकार आर्यों का कौन-सा मत है?

पण्डित—वैदिक मत।

सन्यासी—वैदिक मत तो कुछ नवीन-सा प्रतीत होता है। क्या यह स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का चलाया हुआ वैदिक-मत तो नहीं ?

पण्डित—नहीं, भगवन्! यह वैदिक मत नवीन नहीं, यह तो सृष्टि के आरम्भ का धर्म है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तो इसी सत्य-सनातन धर्म के ब्रह्मा से लेकर जैमुनि ऋषि पर्यन्त महात्माओं की भांति अनुयायी व प्रचारक थे।

संन्यासी—श्रीमन्! मैं भी तो यही कहता हूँ कि जिस सनातनधर्म के पूर्वज ऋषि प्रचारक थे, आर्य लोग स्वामी दयानन्द के पीछे लग कर उस धर्म को न मान कर नवीन-धर्म वैदिक-धर्म को मान रहे हैं।

पण्डित—क्षमा कीजिएगा। आपको कुछ भ्रांति हो गई है। स्वामिन्! वैदिक-धर्म ही सचमुच सत्य सनातन-धर्म है। जिसे आप सनातनधर्म समझ रहे हैं, वह तो वास्तव में पुराण-प्रतिपादित पौराणिक-धर्म है। देखिये, सनातन शब्द का अर्थ पुरातन है। वेद जो कि प्रभु की पवित्र वाणी है, उससे पूर्व कोई धर्म प्रतिपादक ग्रंथ संसार में नहीं बना था। आज योरुप के विद्वान् भी इस सचाई को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर रहे हैं कि संसार के पुस्तकालय में ऋग्वेद से पुरानी पुस्तक अन्य नहीं है। अतः ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान, वेद-प्रतिपादित धर्म ही वैदिक-धर्म, और पुरातन होने से सनातन-धर्म कहलाता है। सब ऋषि इसी धर्म के अनुयायी और प्रचारक थे। आर्य जाति के सौभाग्य वश महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी सतत अभ्यास

और तपस्या के बाद आज से पाच हज़ार वर्ष पूर्व महाभारत के विनाशकारी युद्ध के कारण ह्रास को प्राप्त हुए हुए उसी वैदिक-धर्म का पुनः प्रचार किया है। वह तो हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

सन्यासी—(सहर्ष) बहुत ठीक, अब समझ में आया। अच्छा इसमें क्या प्रमाण है कि वेद प्रभु की पवित्र वाणी है ?

पण्डित—सुनिये महाराज ! यजुर्वेद अ० ३१ मं० ६ में वर्णित है—

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥

अर्थात् ओंकार स्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, सर्वपूज्य, परमपवित्र उस यज्ञ-पुरुष से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकट हुए हैं।

पुन यजुर्वेद अ० २६ म० २ में लिखा है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।

अर्थात् परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के हितार्थ इस कल्याण कारिणी अर्थात् ससार और मुक्ति के सुख देने वाली ऋग्वेदादि चारों वेदो की वाणी का उपदेश करता हू, वैसे तुम भी करो। इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि यह वेदोपदेश परमात्मा का ही है। उसी ने सर्गारम्भ में मानव-समाज की उन्नति और नेतृत्व (रहनुमाई) के लिए तथा सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य के बोध के लिए यथापूर्व पूर्वोक्त यह ज्ञान-स्रोत बहाया है।

सन्यासी—मैं क्या कहूँ ! मेरा हृदय आपकी बातें सुनकर अत्याह्ला-

दित हो रहा है। अब कृपया बतावें कि क्या यह सत्य है कि प्रभु की पवित्र वाणी केवल-द्विजो के लिए है, अन्य स्त्री शूद्रो के लिए नहीं। यदि ऐसा है तब आप का वेद-प्रतिपादित धर्म भला सार्वजनिक और सार्वभौम क्यो कर हो सकता है? मेरे एक मित्र साधु ने—"स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्।" यह एक वचन भी एक बार मुझे सुनाया था।

पण्डित—महाराज! देखिये, परमात्मा हम सब का पिता है। हम सब छोटे बडे, काले गोरे, देशी विदेशी सब उसकी सन्तान हैं। जैसे उसने सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और वनस्पति आदि पदार्थ हमारे सुख के लिए रचे हैं, ठीक उसी प्रकार उस परम-कारुणिक भगवान् ने बिना भेद व पक्षपात के अपनी कल्याणी वेद-वाणी का सब के लिए समान रूप से उपदेश किया है। इसमे पूर्वोक्त यजु० अ० २६ म० २ का प्रमाण देखें। और ऋ० ७-१००-२ मे उस वेद-वाणी को (विश्वजन्याम) अर्थात् सर्वजन-हितकारिणी लिखा है। इसके अतिरिक्त वेद-मन्त्रो में पठित 'नः (हम सब) वः (तुम सब)' शब्द भी समानता के भाव प्रकट करने वाले हैं। 'सखाय आ निषीदत०' (ऋ०१-२२-८)। 'उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।' (य० ३५-१०) आदि मन्त्रो मे सम्बोधनशैली भी विशेषतया देखने योग्य है। वेद ने हे मित्रो! यह सम्बोधन करके सब भ्रमों को मिटा दिया है। आपके मित्र ने जो श्रुति आपको सुनाई तदर्थ मैं सविश्वास कह सकता हूँ कि वह कपोलकल्पित है, और किसी स्वार्थी मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है। यदि यह श्रुति सत्य होती तो इसके अनुसार अमल भी होना चाहिए था। परन्तु अमल

इस के विपरीत दिखाई देता है। आप को ज्ञात होगा कि वेदों के प्रत्येक मंत्र के ऊपर ऋषियों के नाम लिखे हुए मिलते हैं। आप यह न समझें कि उस २ ऋषि ने उस २ मन्त्र का निर्माण किया है। अपितु यास्काचार्य जी की सम्मति-अनुसार ऋषि मन्त्रार्थ के द्रष्टा व विचारक का नाम है। यह समझना चाहिए। पूर्वजों ने ऐसे विद्वान् को ही आज कल की बी० ए०, एम० ए० शास्त्री, प्रभाकर आदि पदवियों की भांति 'ऋषि' पदवी से विभूषित किया था। जैसे आज कल पुरुषों की भांति स्त्रियां उच्चतम परीक्षाएं पास कर प्रान्तीय यूनिवर्सिटी से पदवियां प्राप्त करती व कर सकती हैं, ठीक इसी प्रकार पूर्व वैदिक काल में स्त्रियां ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाभ्यास द्वारा मन्त्रार्थ दर्शन व प्रकाशन की योग्यतानुसार 'ऋषि' की पवित्र पदवी प्राप्त करती थीं। जैसा कि अथर्ववेद के १४ वें काण्ड के प्रत्येक सूक्त के आरम्भ में 'सावित्री सूर्या' का नाम, ऋषि स्थान पर अंकित है। इसी प्रकार 'आयं गौः' मंत्र पर 'सार्पराज्ञी कद्रू' 'नमस्ते अस्तु विद्युते०' पर 'लोपामुद्रा' का नाम अंकित है। इस से सिद्ध होता है कि स्त्री को वेद का पूर्णाधिकार है। इसके अतिरिक्त उपाध्याया-उपाध्यायी, आचार्या आचार्याणी, यह भेद भी योग्यतानुसार है। अर्थात् महर्षि पाणिनि जी ने सिद्ध कर दिया कि उपाध्याय-प्रोफेसर की योग्यता रखनेवाली स्त्री उपाध्याया कहलाती है, और उपाध्याय की पत्नी, पत्नीत्वेन उपाध्यायी कहलाती है। इसी प्रकार प्रिंसिपल की योग्यतावाली स्त्री 'आचार्या' और प्रिंसिपल की पत्नी, पत्नी रूप से 'आचार्याणी' कहलाती है। देखिये स्वामी जी। स्त्रियों

के वेदाधिकार में यह कितना प्रबल प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त कौशल्या, सीता, गार्गी, सुलभा, द्रौपदी आदि अनेक वेद विदुषी देवियाँ इतिहास मे प्रसिद्ध हैं। अतः यह सत्य समझें कि उक्त साधु वाली श्रुति प्रामाणिक नहीं है। कितने हर्ष की बात है स्वामी जी! कि आज-वैदिक धर्मियों के प्रचार एवं प्रभाव से स्त्रियाँ गुरुकुल की ओर कन्या महाविद्यालय की स्नातिका बन कर वेदविषयक निबन्ध और व्याख्याएं लिख रही हैं, तथा वेद के गम्भीर विषयों पर सर्वसाधारण मे व्याख्यान देती हुई दृष्टिगोचर हो रही हैं। यही अवस्था शूद्रो की भी है। उनको भी पूर्व वैदिक काल मे मंत्रार्थ दर्शन प्रकाशन की योग्यतानुसार अन्य उच्च कुलोत्पन्न व्यक्तियो की भान्ति उक्त पवित्र पदवी मिलती थी। उदाहरणार्थ, कवप ऐलूप, वसिष्ठ, गृत्समद, शुनः शेपादि अनेक शूद्रकुलोत्पन्न व्यक्तियो का नाम बताया जा सकता है जिन्होने ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाभ्यास द्वारा उक्त योग्यतानुसार 'ऋषि' की पदवी को प्राप्त किया हुआ था। इसके अतिरिक्त वर्तमानकाल मे भी वह गुरुकुलो के स्नातक बन व शास्त्री पास कर अपनी अनुपम योग्यता का स-प्रमाण परिचय दे रहे हैं। निस्सन्देह इस दिशा मे आर्यसमाज के किए कार्य की आप भी सराहना किए बिना न रह सकेंगे।

सन्यासी—धन्य हो! धन्य हो!! आप ने बहुत अच्छा कहा। मै समझ गया। वास्तव मे आप का धर्म बड़ा पवित्र और सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। अच्छा अब आप विश्राम करें। कल पुनः आप के दर्शन होंगे। शेष विचार ईश्वर सम्बन्धी हैं, जिनके

विषय में आप के धर्मानुसार परिचिति प्राप्त करना चाहता हूं। आशा है, आप अवश्य मेरी एतद् विषयक शकाओं का समाधान करेंगे।

पण्डित—(हँस कर) धन्यवाद के पात्र तो भगवन्! आप ही हैं। यदि आप यह शुभअवसर न देते तो मैं कैसे ऋषि-ऋण से उऋण हो सकता! और आप की सेवा का सु-अवसर पाता। अस्तु। आज्ञा!

सन्यासी—ज़रा ठहरिये। (सेवक से) अरे भाई सुन! वाटिका में से जाओ जल्दी कुछ फल लाओ, पण्डित जी को बिना दक्षिणा दिए न जाने दूंगा। (पण्डित जी से) ५ मिनट और

(पांच सात मिनट में सेवक फल लेकर आया और बोला—)

सेवक—आप की आज्ञानुसार यह उपस्थित हैं, भगवन्!

सन्यासी—लीजिए, पण्डित जी! लीजिए। अच्छा कल दर्शन दीजिए। नमस्ते!

पण्डित—नमस्ते महाराज! धन्यवाद! अच्छा मैं जाता हूं। कल पुन आप के दर्शन करूंगा।

(पण्डित जी और सन्यासी जी का अपने २ स्थानों को जाना)

द्वितीय दृश्य

स्थान— देवाश्रम का चबूतरा

समय—प्रात. ८ बजे

(दूसरे दिन प्रातः सन्ध्या से निवृत्त होकर पण्डित जी कुछ वेद स्वाध्याय करने लगे। उधर भद्रसेन ने आकर अपने स्वामी से कहा—)

सेवक—महाराज! पण्डित जी तो सन्ध्या कर चुके हैं। धर्म चर्चा के लिए यदि आपकी आज्ञा हो तो उन्हें यहां बुलालाऊ, या···

सन्यासी—(बात काट कर) नहीं २, मैं वहीं चलता हूं। आम की छाया है, एकान्त स्थान है। यहां बुलाने की आवश्यकता नहीं। (कह कर चल पड़े—सेवक से) भाई! तुम वह कल वाले कागज और मेरी नोट-बुक ले आओ।

(चबूतरे पर जहाँ पण्डित जी बैठे थे, स्वामी सेवक दोनों पहुँच गए)

पण्डित—(चौंक कर) हा! यह क्या स्वामिन्! मैं तो स्वयं ही आप की सेवा में उपस्थित हो रहा था। यह आपने क्या किया?

संन्यासी—कोई बात नहीं। आप किसी प्रकार का विचार न करें। मुझे यहां आने में कोई कष्ट नहीं हुआ। मैं आप से मिलकर अति प्रसन्न होता हूं। अस्तु। कृपया आप बतलावें कि आप के वैदिक धर्म में ईश्वर का क्या स्वरूप माना गया है। यह जिज्ञासा इस लिए उत्पन्न हुई कि आज कल उक्त विषय में

कई प्रकार की भ्रान्तिया व विचार फैलें हुए हैं। कोई राम, कृष्ण को ही ईश्वर मानता है। कोई ईश्वर को किसी विशेष स्थान पर स्थित मानता है। और कोई उसे अनेक मानता है। अत. ठीक २ उस का स्वरूप ईश्वर की अपनी वाणी वेद से ही बता कर कृतार्थ करें।

पण्डित—मेरा धर्म ईश्वर का जैसा स्वरूप वर्णन करता है सुनिये। मैं आपकी सेवा मे निम्न वेद-वचनो द्वारा प्रस्तुत करता हू।

(क) स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा-
तथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥
यजु० अ० ४० मन्त्र ८॥

(ख) अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो-
रात्मान धीरमजरं युवानम्॥
अ० १०।८।४४॥

(ग) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥
ऋ० १०।८१।३॥

(घ) न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते १३।४।१६॥
न पंचमो न षष्ठो सप्तमो नाप्युच्यते ॥१७॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥१८॥
स एष एक एकवृदेक एव ॥२०॥
(ङ) एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः । अ० २ । २ । १ ॥

भावार्थ—

(क) वह परमात्मा सर्व व्यापक है, शीघ्रकारी है, शरीर रहित, घाव, नस नाडी के बन्धन से रहित है। सदा पवित्र, पापो से सदा मुक्त, सर्वज्ञ, मनः प्रेरक, दुष्टो का तिरस्कार कर्ता और अनादि स्वरूप है। वही प्रजा के लिए सृष्टि रचना और वेद-ज्ञान-प्रदान करता है ॥ ८ ॥

(ख) वह ईश्वर निष्काम, धैर्यवान्, अमर, अनादि, रस से तृप्त, और कहीं से भी न्यून नहीं है, उसको जानने वाला मृत्यु से भी नहीं डरता ॥ ४४ ॥

(ग) एक देव ही सब विश्व का निर्माता है, वही सब को चलाता है। उसी की सम्पूर्ण शक्तिया सर्वत्र एक जैसी हैं। वही सर्व द्रष्टा और सर्व व्यापक एक प्रभु है ॥ ३ ॥

(घ) उस ईश्वर के तुल्य गुण वाला कोई द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम और दशम नहीं कहा जाता, वह एक अकेला ही है, सचमुच एक ही है। (१६—२०)

(ङ) वही एक प्रभु, सब प्रजाओं मे नमस्कार-योग्य और स्तुति-योग्य है ॥ १ ॥

अ हह !!! कैसा सुन्दर रूप ईश्वर का वेद भगवान् ने बताया ! कहिये, क्या यह गुण राम कृष्ण आदि किसी व्यक्ति मे दिखाई दे सकते हैं ? स्वामिन् ! हम आर्य लोग राम कृष्ण

आदि शरीर धारियों को परमात्मा नहीं मानते। हम उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम और योगेश्वर महान् आत्मा, तथा आस्तिक मानते हैं। हमारे हृदय में उनके प्रति ' ' ।

सन्यासी—(बात काट कर) पण्डित जी! जैसा वेद ईश्वर का स्वरूप बयान करता है उस पर तो मुझे कोई शंका नहीं। परन्तु मैंने सुना है कि आप लोग राम, कृष्ण आदि की निन्दा करते हैं, क्या यह ठीक है ?

पण्डित—बिल्कुल नहीं। किसी वस्तु का यथावत् प्रतिपाद करना निन्दा नहीं, अपितु स्तुति कहलाती है। हम आर्य लोग, उन्हें किसी अवस्था मे ईश्वर मानने को उद्यत नहीं। हा! मनुष्य समाज में जो सर्वोत्तम पदवी हो सकती है उन्हें देने को तैय्यार हैं, और देते भी हैं। देखिए, आर्य समाज के संस्थापक और वैदिक धर्म के पुनः प्रचारक महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश ११ समु० पृ० ३५७ (सोलहवींवार) मे लिखते हैं:—

"देखो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषो सदृश है। जिस में कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुच्छ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियो से रास मण्डल, क्रीडा आदि मिथ्यादोष श्री कृष्ण जी मे लगाये हैं। इस को पढ पढा, सुन सुना के अन्य मत वाले

श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती ?"

यह हैं महाराज ! हमारे आचार्य के श्री कृष्ण जी के बारे में हृदयोद्गार इन्हें पढ़ सुन कर भी कोई कह सकता है ? कि आर्य लोग भगवान् कृष्ण के निन्दक हैं ? अब श्री राम जी के विषय मे भी जरा स्वामी जी ! सुनिये महाराज क्या लिखते हैं—

"देखो ! मूर्ति पूजा से श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण और शिवादि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उन की स्त्री सीता, रुक्मणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महारागियाँ थीं। (पृ० ३६६)

पुन: ३७० पृ० पर लिखा है—

"रासमण्डल व रामलीला के अन्त मे सीता राम व राधाकृष्ण से भीख मंगवाते हैं। जहा मेलाठेला होता है वहां छोकरे पर मुकुट धर कन्हैया बना मार्ग में बैठा कर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिए कि कितने बड़े शोक की बात है। भला कहो तो क्या सीता रामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे ? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ?"

यह है आर्य लोगों की धारणा श्रीकृष्ण और श्रीराम जी के विषय मे। महाराज ! निस्सन्देह आप को हमारी स्थिति का इन उद्धरणों से सम्यग-बोध हो गया होगा। आप सत्य

समझें, आज का शिक्षित समाज आर्य समाज के सत्य सिद्धान्तो को बहुत ऊंचे भाव से देखता है। हां, स्वार्थी लोग भले ही आर्य समाज को कोसें, तो कोसें। अन्य कोई नहीं कोस सकता। भगवन्! हा, यह मैं ठीक आप से कहता हूं।

सन्यासी—आप ने तो मेरी हृदय की शंका-शृंखला को बिल्कुल ही काट दिया। आप लोग सही रास्ते पर हैं। स्वामी दयानन्द जी ने आप को सही रास्ता बताया है। मैं पण्डित जी! अभी तक सचमुच भूल में था। मैं कभी २ आप के आचार्य को कोसा भी करता था। परन्तु आज से मैं समझा कि स्वामी दयानन्द वास्तव में वर्तमान युग के सब से बडे सुधारक एवं पथ-प्रदर्शक थे। मेरा उनके चरणों मे बारम्बार प्रणाम है। अच्छा अब एक और शंका भी पैदा होती है कि जैसा आपने अभी अथर्व २।२।१ द्वारा फर्माया कि ईश्वर एक है और वही केवल उपास्य है, तो वेदो मे अनेक देवताओ अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य और वरुण आदि की पूजा का वर्णन क्यों मिलता है। कृपया कुछ स-प्रमाण बोध तो कराइये।

पण्डित—बहुत अच्छा, सुनिये। वास्तव में बात यह है कि वैदिक-विद्वान् वेद-मन्त्रों के तीन प्रकार—आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधि भौतिक—के प्रकरणानुसार अर्थ करते है। अतः अग्नि, वायु आदि जहा जड पदार्थों के वाचक हैं, वहा आध्यात्मिक प्रकरण में ईश्वर के गौणिक नाम, अर्थात् गुण, कर्म स्वभावानुसार उसी के वाचक हैं। इस आशय को स्पष्ट करने वाले निम्न वेद-वचन देखने योग्य हैं —

१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णोगरुत्मान्
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः॥
ऋ० १। १६४। ४६

२ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
यजु० ३२। १

भावार्थ—ज्ञानी लोग एक, अद्वितीय, जगदीश्वर को अनेक गुण कर्म स्वभाव-युक्त होने से अनेक नामों—अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा आदि—से कथन करते हैं। वस्तुतः वह एक ही है ॥१॥

वही परब्रह्म अग्नि है, वही आदित्य है, वही चन्द्रमा, वही वायु वही शुक्र, आपः और प्रजापति कहलाता है ॥२॥

कहिये, भगवन्! इन मन्त्रों के होते हुए, वेद पर या वैदिक धर्मियों पर अनेक देवता-पूजा-वाद का कौन आक्षेप कर सकता है और इस से अधिक स्पष्ट एकेश्वर-वाद का कहां वर्णन मिल सकता है।

सन्यासी—धन्यवाद! आप का यह सिद्धान्त भी मुझे समझ में आगया। इस पर मेरी अब कोई शंका नहीं। तो क्या आप जड़-देवता-पूजा के विरोधी हैं? आप इन्हें देवता नहीं मानते?

पण्डित—मानते तो हैं, परन्तु हम इन्हें ईश्वर के तुल्य उपास्य नहीं मानते। हां, अग्नि आदि पदार्थ मनुष्य मात्र की भलाई के हेतु परमात्मा ने रचे हैं। इन से ठीक २ लाभ उठाना ही इनकी पूजा है।

सन्यासी—क्यों जी ? यदि कोई मनुष्य जड-देवता मे ईश्वर-बुद्धि रख कर उपासना करे तो उसके लिए आपका धर्म-ग्रन्थ क्या कहता है ?

पण्डित—सुनिये महाराज ! वेद कहता है :—

१ अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥

यजु० अ० ४० । ६

२ न तस्य प्रतिमा अस्ति । य० ३२ । ३

भावार्थ—(और भाष्य) जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान मे उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दु:ख सागर मे डूबते हैं । और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान पर करते हैं वह इस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात महामूर्ख चिरकाल घोर दु:ख रूप नरक मे गिर के महाक्लेश भोगते हैं ॥१॥

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य व मूर्त्ति नहीं है । २ ।

इस प्रकार अनेक मन्त्रों द्वारा वेद में, स्वामी जी महाराज ! ईश्वर के स्थान पर अन्य प्राकृतिक पूजा का निषेध मिलता है । देख लीजिए ।

सन्यासी—बहुत ठीक । अच्छा एक बात और बताइये कि ईसाई लोग बड़े गर्व के साथ कहा करते हैं कि देखो हमारे धर्म ग्रन्थ

इंजील मे परमात्मा को पिता नाम से पुकारा है। यह विशेपता सिवाय हमारे धर्म के अन्यत्र न मिलेगी। क्या यह सत्य है ?

पण्डित—बिल्कुल नहीं। देखिये, सब लोग जानते हैं कि सन्तान के प्रति माता का जैसा शुद्ध-सात्विक-प्रेम होता है वैसा पिता का नहीं। इंजील तो केवल ईश्वर को पिता के नाम से पुकारती है। किन्तु मेरा वेद ईश्वर को, माता, पिता, सखा, सम्बन्धी आदि अनेक प्रेम भरे शब्दों से स्थान २ पर पुकारता है। वेद की इस विशेपता पर हम आर्य लोग ही सत्यतः गर्व कर सकते हैं। देखिये, वेद,—

१—त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। अथर्व २० । १०८ । २

२—स नः पिता जनिता स उत बन्धुः। अ० २ । १ । ३

३—मां हवन्ते पितरं न जन्तवः। ऋ० १० । ४८ । १

४—त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। ऋ० १।७५।४

५—इन्द्रस्य युज्यः सखा। यजु० १६ । ३

भावार्थ—हे सर्व संसार को बसाने वाले प्रभो! आप ही निश्चय से हमारे पिता व माता हो। हम सदा आप को चाहते हैं।१।

वह परमेश्वर ही हमारा पिता व बन्धु है। २।

सब प्राणी मुझे ही पिता की नाईं (सुखार्थ) पुकारते हैं।३।

हे तेजोमय देव! आप सब जीवों के बन्धु और प्यारे मित्र हैं। ४।

भगवान ही जीव का सब से नजदीकी मित्र है। ५।

कहिए, भगवन्! ऐसा सुन्दर और स्पष्ट तथा मनोहर वर्णन आज से पूर्व कभी आप ने सुना। सत्य बतावें कि यह अभि-

मान की वस्तु हमारे लिए है या नहीं।

संन्यासी—पंडित जी! आप ने तो कमाल कर दिया। धन्य है आप का स्वाध्याय। निस्सन्देह आप का धर्म ही सत्य-धर्म है। आप ने मेरी ईश्वर-सम्बन्धी प्रमुख शंकाओं का निवारण करके अत्युपकार किया है। आप सरीखे विद्वान् ही सत्य-विचारों का सर्व साधारण में प्रचार कर सकते हैं। अस्तु, अब समय काफी हो गया है, अब यह चर्चा समाप्त करनी चाहिए। अच्छा कल आप के दर्शन कब होंगे?

पण्डित—स्वामी जी! मैं कल प्रातः आप की सेवा में उपस्थित न हो सकूंगा। क्यों कि कल रविवार का दिन है, मुझे साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित होना है। यदि आप की आज्ञा हो और आप समय दे सकें तो मैं शाम को कोई तीन बजे के लगभग सेवा में उपस्थित हो सकता हूं। कहिये, क्या विचार है?

संन्यासी—बहुत अच्छा, शाम को ही सही। अब मुझे आप से कर्म-फल के विषय में कुछ विचार करना है। ठीक होगा न?

पण्डित—हां-हां! क्यों नहीं, अवश्य, अवश्य। अच्छा अब आज्ञा दीजिए।

संन्यासी—(सेवक से) ओ भद्रसेन! सुन इधर आ, पण्डित जी जा रहे हैं। अरे तू भूल गया। जा वहां कुछ मिठाई पड़ी है, ले आ जा।

पण्डित—नहीं, नहीं, क्या आवश्यकता है। सब आप की दया है। रोज २ यह उचित प्रतीत नहीं होता। बस! आज्ञा, नमस्ते जी!

संन्यासी—(सेवक को रोक कर) अच्छा मैं आपको नाराज़ नहीं करना चाहता। नमस्ते! कल तो भेंट होगी ही न!

(दोनों अपने स्थानों को विदा हो गए)

प्रथम प्रकरण समाप्त

द्वितीय प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम की वाटिका

समय—बाद दोपहर ३ बजे

(आश्रमाध्यक्ष विमलानन्द सन्यासी पहिले ही से आसन बिछा कर बैठे हुए थे, नियत समय पर पं० धर्मज्ञ जी भी पधारे। आपसी नमस्ते के बाद परस्पर यों संवाद हुआ—)

पण्डित—कल आपने कर्मफल विषय पर कुछ विचार करने के लिए कहा था, सो कृपया कहिये कि इस पर आप को क्या शंका है ?

सन्यासी—प्रथम मैं यह जानना चाहता हूं कि पाप और पुण्य—बुरे-भले कर्म—की क्या पहिचान है ?

पण्डित—पूर्वजों का कथन है कि जिस कर्म के करने में भय, शंका व लज्जा उत्पन्न हो वह पाप—बुरे—कर्म हैं। इसी प्रकार जिस कर्म के करने में अभय, निःशंकता, आनन्दोत्साह उठता है, वह पुण्य—भले—कर्म कहलाते हैं। इतना और स्मरण रक्खें कि यह जीवात्मा की ओर से नहीं-अपितु अन्तर्यामी परमेश्वर की ही ओर से होता है। फिर भी जीवात्मा पाप-पुण्य मे अपनी स्वतंत्रता से प्रवृत्त होता है।

सन्यासी—जीव, स्वतंत्र थोड़ा है ? इसे तो ईश्वर ने बनाया है। अतः उसी के संकेत पर इसकी पाप-पुण्य में प्रवृत्ति होती है। ऐसा मैंने सुना है। क्या यह मिथ्या है ?

पण्डित—भगवन् ! शास्त्र आपके विचार का समर्थन नहीं करता। वेद का प्रमाण सुनिये जिस में जीव को ईश्वरोत्पन्न न मान कर अनादि स्वीकार किया है। जैसा कि—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

ऋ० १। १६४। २०

भावार्थ—जीव और ब्रह्म दोनों चेतन, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं। और अनादि मूल कारण प्रकृतिरूप वृक्ष पर बैठे हैं। इनमे से एक जीव है जो पाप-पुण्य रूप कर्मों के फल को अच्छी प्रकार भोगता है। दूसरा परमात्मा कर्म-फल को न भोगता हुआ सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। इस से सिद्ध है कि जीव अनादि है। ईश्वर ने इसे नहीं बनाया। यह जीव जैसा 'स्वतन्त्रः कर्ता'—अष्टाध्यायी सूत्र के अनुसार स्वतन्त्रता से भले-बुरे कर्म करता है वैसा ही फल ईश्वर की न्याय-व्यवस्था के अनुसार पाता है? यदि आपके कथनानुसार यह मान लिया जाय कि ईश्वर ने इसे पैदा किया, वही इसे बुराई-भलाई मे प्रवृत्त करता है, तो कृपया बतावें कि सुख-दुःख रूप फल यह क्यों भोगता है? क्यों न वह ईश्वर भोगे जिसने इसे पैदा करके पाप-पुण्य में प्रवृत्त किया? महाराज ! सारी बात ही बिगड जायगी। अतः सत्य सिद्धान्त यही है कि जीव अनादि है, स्वतन्त्रता से कर्म करता है और अन्तर्यामी ईश्वर की व्यवस्थानुसार उसका फल पाता है।

संन्यासी—आप की बात ठीक है। समझ में आगई तो क्या परमात्मा जो हमारा पिता है, स्तुति, प्रार्थना, उपासना द्वारा प्रसन्न हुआ २ हमारे पाप कर्मों को क्षमा नहीं कर सकता? यदि नहीं तो स्तुति आदि की फिर कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। क्यों जी?

पण्डित—आपका कथन असंगत प्रतीत होता है। हम लोग ईश्वर की स्तुति-प्रार्थनोपासना द्वारा उसकी खुशामद थोड़ा करते हैं। इस का तो फल ही कुछ और है। सुनिये, मेरे आचार्य के शब्द महाराज लिखते हैं—(स० प्र० ७ म० समु० पृ० १६०) "स्तुति से ईश्वर में प्रीति उस के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना। प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना। उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।"

अतः सिद्ध है कि स्तुति आदि से आत्मसुधार, आत्मोन्नति, ही होती है। इससे परमात्मा का कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। रही पाप-क्षमा की बात, सो सुनिये। महाराज इस पर लिखते हैं—(७ म० समु० पृ० २००)

"प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है या नहीं? उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय। और सब मनुष्य महापापी हो जावें। क्योंकि क्षमा की बात सुनकर ही उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वह उत्साह पूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करे। क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा। और उनको भी भरोसा हो जाय कि

राजा से हम हाथ जोडने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हो जाएंगे। इसलिए सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।"

सन्यासी—बहुत ठीक! आपने जो अपने आचार्य का मत प्रदर्शित किया है उससे सचमुच मेरी शंका मिट चुकी है कि पापकर्म किसी भी अवस्था मे क्षमा नहीं किए जा सकते। उनका फल कर्ता को अवश्य भोगना होगा। यह तो है न ठीक। किन्तु जीव स्वयं ही अपने किये का फल भोग सकता है तो फिर ईश्वर की न्याय व्यवस्था का झमेला आप क्यों बीच में लाते हैं?

पण्डित—भगवन्! इस शंका पर भी मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर पूर्ववत् अपने आचार्य जी के ही शब्द सुनाकर समाधान करता हूं। देखिये महाराज लिखते हैं—(स० प्र० १२ समु० पृ० ४४७)

"जैसे बिना राजा के डाकू लंपट चोर आदि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी व कारागृह में नहीं जाते, न वे जाना चाहते हैं। किन्तु राज्य की न्याय व्यवस्थानुसार बलात्कार (ज़बर्दस्ती) से पकड़ा कर राजा यथोचित दण्ड देता है। इसी प्रकार जीव को भी ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से स्व स्व कर्मानुसार यथा योग्य दण्ड देता है। क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल भोगना नहीं चाहता.. ।"

संन्यासी—धन्य हैं आप ! और धन्य हैं आपके आचार्य !! अब मुझे इस विषय में कोई शंका नहीं रही। पर एक बात और बतावें कि यह तो ठीक है कि जीव अपनी स्वतंत्रता से पाप-दुष्ट-कर्म मे फंसता है। क्या इस मे और भी कोई कारण है ? यदि है तो वेद वचन द्वारा इस शंका का कृपया निवारण करें।

पण्डित—बहुत अच्छा। लीजिए, सुनिये वेद का वचन—

१. अक्ष द्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।

अथर्व० ५ । १८ । २

२ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।

ऋ० ७ । ८६ । ६

भावार्थ—इन्द्रियों के लोभ के कारण ही पाप पैदा हुआ २ आत्मा को पछाड देता है ॥१॥

जीव को पाप कर्म मे फंसाने वाले इस के अतिरिक्त ६ और कारण हैं। १–इन्द्रियों की चंचलता, २–सुरापान, ३–क्रोध, ४-जूआ, ५–अज्ञानता, और ६–स्वप्न ॥२॥

संन्यासी—श्रीमन् ! अब मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ कि जीव पाप-ग[र्त] मे स्वयं अपने कर्मों से गिरता है। परमात्मा का इस मे कोई हाथ नहीं। अब केवल अन्तिम शंका इस विषय की एक रह गई है। कृपया उसका भी वेद-प्रमाण द्वारा समाधान करें तो अच्छा होगा। वह यह है कि क्या धन, सम्पत्ति और भोज्य सामग्री की भांति परिवार के लोग परस्पर कर्म-फल को बांट सकते हैं ? क्या इसमें न्यूनाधिक्य भी हो सकता है ?

पण्डित—नहीं, बिल्कुल नहीं। 'जो जैसा करता है वैसा भरता है।' यही सत्य-सिद्धान्त है। यही वेदादि सत्य शास्त्रों का सार है। सुनिये, वेद में आता है—

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति॥
अ० १२।३।४८

भावार्थ—इस न्यायकारी प्रभु की न्याय व्यवस्था में न तो कोई त्रुटि है, और न ही सहारा-सिफारिश है। और न ही कोई ऐसा उपाय है कि जिससे मित्रों के साथ चल कर जा सकें। हमारा यह कर्मों से कमाया हुआ जिस में न्यूनाधिक्य नहीं हुआ ऐसा पात्र सुरक्षित रक्खा है। पकाने वाले को पकाई वस्तु फिर से भली प्रकार मिलती है।

सन्यासी—वाह! वाह!! मैं क्या कहूं। आप बड़े विद्वान् हैं। आप से जैसा भी प्रश्न किया आपने युक्ति युक्त समाधान किया। जहां वेद-प्रमाण मांगा, आपने वेद प्रमाण देकर मुझे निरुत्तर किया। धन्य है आपकी स्मरण शक्ति और धन्य है आपकी सामयिक सूझ।

पण्डित—स्वामी जी! आप जो इतना मुझे सन्मान दे रहे हैं मैं इसके कदापि योग्य नहीं हूं। यह तो आप सरीखे उदार-हृदय साधुओं की चरण-सेवा का तुच्छ फल है। अस्तु, आज्ञा है? मैं जाता हूं। नमस्ते जी!

सन्यासी—नमस्ते! कल तो प्रातः काल ही दर्शन होंगे न।

पण्डित—हां जी, हां।

(पण्डित जी का घर को जाना और सन्यासी जी का अपने विश्राम-भवन की ओर जाना)

द्वितीय दृश्य

समय—प्रात ८ बजे

स्थान—देवाश्रम का चबूतरा

(दैनिक सन्ध्योपसन के अनन्तर सन्यासी जी और पण्डित जी में निम्न प्रकार सम्वाद आरम्भ हुआ—)

संन्यासी—पण्डित जी ! अभी मैंने ३ दिन ही आप से सत्संग किया है। आपने तो सचमुच मुझे अपने धर्म का दीवाना बना लिया है। आप का धर्म ही आईन्दा संसार का धर्म होगा। यही धर्म वास्तव मे सर्वप्रिय और विश्वव्यापी हो सकता है, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। आप के सब सिद्धान्त युक्ति युक्त और बुद्धि पूर्वक हैं।

पण्डित—निस्सन्देह आपके विचार उत्तम हैं। परमात्मा की कृपा से अवश्य एक दिन यह धर्म पूर्ववत् संसार का धर्म होगा। अब आप किस विषय पर विचार करना चाहते हैं ? कृपया कहियेगा।

सन्यासी—मैं आज पुरुषार्थ और प्रारब्ध के विषय मे कुछ जानना चाहता हू। आया पुरुषार्थ बलवान् है या प्रारब्ध। कृपया इस संशय को आज मिटावे तो अच्छा होगा।

पण्डित—बहुत अच्छा। प्रथम तो आप इस विषय मे मेरे आचार्य की सम्मति सुनें। तत्पश्चात् कुछ युक्ति व शास्त्र के प्रमाण दूंगा। मेरे ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश के रूप मे अपने ५१ सिद्धान्तो को सूत्र रूप में

लिखा है। उनमें से २५ वा सिद्धान्त उक्त शंका के सम्बन्ध में यों लिखा है—

"पुरुषार्थ प्रारब्ध से इसलिए बड़ा है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं। इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।"

इस ऋषि-वचन से हम वैदिक धर्मियों की उक्त विषय में जो स्थिति है वह तो नितान्त स्पष्ट हो ही रही है। इसके अतिरिक्त मेरा धर्म कर्मण्यता—पुरुषार्थवाद—का ही उपदेश देता है। वैदिक धर्म में अकर्मण्यता, आलस्य, राम भरोसे बैठे रहना, और किस्मत किस्मत की रट लगाते रहना आदि विचारों को बिल्कुल स्थान नहीं दिया गया। वेद की निम्न लिखित शिक्षाएं विशेष रूप से मनन योग्य हैं। सुनिये:—

१ इन्द्र इच्चरतः सखा। ऋ० ७। १५। १

२ कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
अ० ७। ५०। ८

३ उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। अ० ८। १। ६

४ उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था मृत्योः पड्वीशमवमुंचमानः। अ० ८। १। ४

५ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतं समाः।
य० ४०। २

भावार्थ—परमेश्वर निश्चय पुरुषार्थी का ही मित्र है ॥१॥

यदि मेरे दक्षिण हाथ में पुरुषार्थ होगा तो विजय मेरे वाम हाथ में होगी ॥२॥

हे पुरुष ! तेरी सदा गति उन्नति की ओर हो। अध:पतन न हो। तेरे जीवन के लिए दक्षता का बल प्रदान करता हूं। तू इस शरीर रूपी रथ पर सवार होकर आगे बढ़ ॥३॥

हे पुरुष ! तू वर्तमान अवस्था से ऊपर उठ। नीचे मत गिर। तू मृत्यु के पाश-बन्धन को तोड़ता हुआ आगे बढ़ ॥४॥

मनुष्य को योग्य है कि वैदिक कर्म, सन्ध्यानुष्ठान, स्वाध्याय तथा सन्त समागम करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। यही उन्नति का साधन है ॥५॥

इन वेदोपदेशों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि संसार में विजय, सुख, शान्ति व सर्व प्रकार की उन्नति का मूल साधन यह अमोघ-बल पुरुषार्थ ही है। इस जीवन में मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा जो शुभाशुभ कर्म करता है उसी का फल अगले जन्म में उसे मिलता है। इसी का नाम प्रारब्ध है। अत: यह निश्चय हुवा कि पुरुषार्थ वृक्ष और प्रारब्ध उसका फल है। मोटे शब्दों में पुरुषार्थ पिता है और प्रारब्ध पुत्र है। पुत्र किसी भी अवस्था में पिता से बड़ा नहीं हो सकता। यदि मनुष्य चाहे कि मेरा प्रारब्ध अच्छा बने तो उसे वर्तमान जीवन में अति तत्परता से पुरुषार्थ करना चाहिए। यही सफलता की कुंजी है।

संन्यासी—पुरुषार्थ और प्रारब्ध के विषय में आप का सिद्धान्त तो

मैंने जैसा आपने वेद-प्रमाण और ऋषि के कथनानुसार बतलाया, अच्छी तरह से समझ लिया । परन्तु एक शंका और इस विषय मे पैदा होती है कि प्रारब्ध तो हमारा पूर्व से ही निश्चित है न ! जो भगवान् ने लिख दिया वह अमिट है । अतः जो प्रारब्ध मे लिखा होगा वह अवश्य मिलेगा ही । पुन: पुरुषार्थ की भगवन् ! क्या आवश्यकता रही ?

पण्डित—भगवन् ! आप की यह शंका भी निर्मूल है । क्योंकि यदि पूर्व से ही प्रारब्ध निश्चित हो और जो लिखा है वही मिलता हो तो फिर संसार के लोग उन्नति के लिए क्यों प्रयत्न करते हैं । उन्नति-अवनति तो प्रारब्ध के अनुसार होनी ही है । ऐसी अवस्था मे वेद, गीता, रामायण आदि के पढने की, सन्ध्या, उपासना, तर्पण, पूजा, पाठ, जप आदि के करने की, ऋषियों-मुनियो और पैगम्बरों के मानने की, प्रचार, सत्संग और उपदेशादि की, फिर क्या आवश्यकता है ? क्योंकि ईश्वर ने तो पहिले ही प्रारब्ध में लिख दिया कि अमुक मनुष्य ने अमुक २ कर्म करके स्वर्ग में जाना है । अमुक ने अमुक कर्म करके नरक में जाना है । अतः वह अवश्यमेव ईश्वर के पूर्व लिखे लेखानुसार स्वर्ग-नरक मे जायेंगे ही । उस में तो तिल भर भी परिवर्तन नहीं होना । फिर बताईये, वेदादि पाठ की, सन्ध्यादि क्रियाओ की, सत्संग, प्रचार उपदेशादि की क्या आवश्यकता है ? अत यह विचार कि जो भगवान् ने जन्मते ही माथे मे लिख दिया वह अमिट है, अपरिवर्तन-

शील है, मनुष्य उसी के अनुसार गिरता और उभरता है, बिल्कुल गलत है। भाग्य के निर्माता तो वास्तव में हम स्वयं ही हैं। जितना कर्म उत्तम होगा उतना ही प्रारब्ध अच्छा होगा।

संन्यासी—पण्डित जी ! आपका धन्यवाद ! अब मुझे इस विषय में कोई शंका नहीं रही। वास्तव में पुरुषार्थ ही प्रारब्ध का मूल है। भाग्य के निर्माता हम स्वयं ही हैं। गिरना या उभरना हमारा अपने हाथ में है, इत्यादि सब बातें मैंने भली भांति समझ ली। अब मुझे कुछ 'पुनर्जन्म' के विषय पर समझावें। मुसल्मान, ईसाई तो इस सिद्धान्त को मानते ही नहीं। हिन्दुओं के अन्दर भी मेरे विचार में कई लोग ऐसे होंगे जो इस सिद्धान्त को न मानते हों। अतः मेरी इच्छा आपके धर्मानुसार इस विषय को समझने की है।

पण्डित—मैं बड़ा प्रसन्न हूं। अवश्य इस पर विचार होना चाहिए। परन्तु स्वामी जी ! यह विषय अति गम्भीर है। मेरे ख्याल में इस पर कल विचार करें तो अच्छा हो। कहिये ठीक है न।

संन्यासी—मुझे कोई आपत्ति नहीं। कल सही। मैं आपके साथ हूं। अच्छा, तो अब आप क्या खाएंगे ? पानी आदि तो कुछ.. ...

पण्डित—बस ! धन्यवाद ! मुझे कोई इच्छा नहीं। आज्ञा है ? नमस्ते !

संन्यासी—नमस्ते ! धन्य हो ! धन्य हो !! अच्छा सुनिये तो। कल मेरी बात आप मानें भोजन यहीं कीजिएगा।

पण्डित—आप भोजन का कष्ट न करें। आपकी बड़ी कृपा है। वहां भी तो आपका ही खाता हूं। फिर कभी देखा जायगा। अब के लिए क्षमा करें।

सन्यासी—आपकी इच्छा। मैं बल नहीं देता। अच्छा जब आप चाहेंगे उसी दिन ही सही।

(यह कहकर हंसते हुए स्वामी जी एक ओर और पण्डित जी घर की ओर चले जाते हैं)

(द्वितीय प्रकरण समाप्त)

तृतीय प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—पण्डित जी का घर

समय—प्रात ८ बजे

(आज पण्डित जी की कन्या बीमार थी। एक शिष्य द्वारा प० जी ने श्री विमलानन्द जी सन्यासी को अपने हां ही बुलवाया आता देख कर—)

पण्डित—महाराज ! आइये, आइये ! बडी कृपा की है। मेरा तुच्छ स्थान भी आपके पवित्र चरणों से पवित्र हो गया। क्षमा कीजिएगा भगवन् ! आज अचानक मेरी कन्या बीमार पड़ गई। मैंने सोचा कि इस का भी दिल लगा रहेगा और हमारा समय भी व्यर्थ न जायगा। अत. आप को यहां आने का कष्ट दिया गया, और. ...

सन्यासी—(बात काट कर) अजी क्या कहते हैं। कष्ट की क्या बात है। जो आप मुझ पर उपकार कर रहे हैं मैं तो उसे जन्म भर भी भूल नहीं सकता। श्रीमन् ! यदि आप चाहें तो आज की चर्चा स्थगित की जा सकती है कोई ऐसी बात नहीं।

पण्डित—नहीं, नहीं। अधिक कष्ट नहीं है। आप चर्चा आरम्भ करें।

सन्यासी—तो बहुत अच्छा। कृपया पुनर्जन्म का सिद्धान्त मुझे समझावें ? इस सिद्धान्त के मान लेने से क्या लाभ है ? यदि

हो सके तो प्रथम आप अपने आचार्य जी का ही मत सुनाइये। उनके विचारों को भी सुन कर अतीव आनन्द आता है।

पण्डित—तो लो सुनो। यहां क्या देर है। (सत्यार्थ प्रकाश का ६ वा समु० पृ० २६० खोल कर) देखिये महाराज लिखते हैं:—

"(प्रश्न) जन्म एक है व अनेक ?

(उत्तर) अनेक,

(प्रश्न) जो अनेक तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ?

(उत्तर) जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं। इसलिए स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिए।. . .और तुमसे कोई पूछे कि १२वर्ष के पूर्व १३ वें वर्ष के ५ वें महीने के ६ वें दिन १० बजे १ ली मिनट में तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र शरीर किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचार था ? क्या तुम बता सकते हो ? जब इसी शरीर मे ऐसा है तो पूर्व-जन्म की बातो के स्मरण में शंका करना केवल लड़कपन की बात है। और जो स्मरण नहीं होता इसी से जीव सुखी हैं। नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख २ दुःखित हो कर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो नहीं जान सकता। क्यो कि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है जीव के नहीं।

(प्रश्न) जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं, और ईश्वर उसे दण्ड देता है, तो जीव का सुधार नहीं हो सकता। क्योंकि जब उसे ज्ञान हो कि हम ने अमुक काम किया था, उसी का यह फल है तभी वह पाप कर्मों से बच सके?

(उत्तर) तुम ज्ञान कितनी प्रकार का मानते हो?

(प्रश्न) प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

(उत्तर) तो जब तुम जन्म से लेकर समय २ में राज, धन-बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता, आदि सुख दुःख संसार में देखकर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते। जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो। उसका कारण वैद्य जान लेता है, अविद्वान् नहीं जान सकता। उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है, दूसरे ने नहीं। परन्तु ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है जिससे मुझे यह रोग हुआ। वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्व-जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते? और जो पूर्व जन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और बिना पूर्व संचित पुण्य के राज्य धनाढ्यतादि सुख उस को क्यों दिए? पूर्व जन्म के पाप-पुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है। (पृ० २६१)"

पुनः पृष्ठ २६२ पर आचार्य लिखते हैं :—

"एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर सुगन्धि युक्त

जलादि से स्नान युक्ति से नाडीछेदन दुग्धपानादि यथा योग्य प्राप्त होते हैं . . दूसरे का जन्म जंगल मे होता है। स्नान के लिए जल भी नहीं मिलता। जब दूध पीना चाहता है तब दूध के बदले मे घूंसा थपेडा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है। कोई नहीं पूछता, इत्यादि। जीवों को बिना पुण्य पाप के सुख दु:ख होने से परमेश्वर पर दोष आता है। इस लिए पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म, और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म (पुनर्जन्म) होते हैं।" (पृ० २६३)

यह है भगवन् ! मेरे आचार्य जी का मत। आशा है आप ने अच्छी प्रकार समझ लिया होगा ?

सन्यासी—जी हा, मैंने समझ लिया है। मेरी आत्मा बडी प्रसन्न हुई है। मुझे सन्तोष हो गया है। अब आप केवल मुझे इस विषय को बताने वाले यदि कुछ वेद-वचन हो तो कृपया सुनाईये ?

पण्डित—महर्षि जी ने जिस सुन्दर रीति से इस विषय को समझाया यह तो आपने देख ही लिया। अब आप वेद-प्रमाण सुनियेगा—

१ पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्।

य० ४। १५

२ अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥
अथर्व० ११।४।१४

भावार्थ—(ऋषि का भाष्य) जब जीव सोने व मरणादि व्यवहार को प्राप्त होते हैं तब जो २ मन आदि इन्द्रियां नाश हुए के समान होकर जगने या जन्मान्तर में जिन कार्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रियां परमेश्वर की व्यवस्था के अनुसार शरीर वाली होकर कार्य करने को समर्थ होती हैं। इस लिए सब को योग्य है कि जो परमेश्वर पाप रूप कर्मो से अलग कर धर्म मे प्रवृत्त कर वार २ मनुष्य-जन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार व दुःखों से पृथक् करके इस लोक व परलोक के सुखो को प्राप्त कराता है, उसकी अवश्य उपासना करें ॥१॥

यह जीव गर्भ मे भी श्वास-उच्छ्वास लेता है। हे जीवनाधार प्रभो! जब आप अनुमति देते हैं तब यह पुनर्जन्म लेता है।२।

इत्यादि अनेक मन्त्रों से यह सिद्धान्त स्फुट हो रहा है। सचमुच यही सिद्धान्त है जो मनुष्य को कुपथ से सुपथ की ओर ले जाता है। भला जिन को इस पर विश्वास ही नहीं, या जिनके मत में यह घोषणा की गई हो :—

यावज्जीव सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

बताईये उनका सुधार क्यों कर हो सकता है। वह लोग तो निश्चय से 'न साम्परायः प्रतिभाति बालम्' इस उपनिषद्

वाक्य के अनुसार परलोक, पर-जन्म, पर विश्वास न करके के कारण वाल—(अज्ञो भवति वै बालः। मनु०) अज्ञानी हैं।

सन्यासी—आपका अति धन्यवाद। अब रही सही शंका भी मिट गई है। अब केवल एक बात और है। वह भी कृपया बतादें, कि यह जीव किस रीति से अन्य शरीर में जाता है?

पडित—स्वामी जी! ठीक ऐसा ही प्रश्न मेरे आचार्य जी से हुआ था। अतः जो समाधान उन्होने, दिया—मैं उसे ही आपकी सेवा मे सुनाना चाहता हू। आशा है उससे आप की पूर्ण सन्तुष्टि हो जायगी। ठीक है न। कहिये सुनाऊं?

सन्यासी—हा, हा अवश्य २।

पण्डित—महर्षि जी सत्यार्थ प्रकाश नवम समु० पृ० २६३-६४ पर यों लिखते हैं—

"पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है। वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर मे ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर बाहिर आता है।"

सन्यासी—बस! भगवन्! मैं बिल्कुल समझ गया हूं। क्यो जी! जीव का कभी इस जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा भी हो सकता है।

पडित—क्यो नहीं, अवश्य छुटकारा हो सकता है।

सन्यासी—कब?

पण्डित—जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता।

सन्यासी—तो क्या मुक्ति के पा लेने से फिर इस चक्कर में नहीं आता। ईश्वर में ही लय हो जाता होगा?

पण्डित—नहीं। जब उसकी अवधि समाप्त हो जाती है पुनः संसार में उत्तम कर्म-धन संग्रह के लिए आता है। ईश्वर में लय नहीं होता। भगवन् यह विषय भी अति महत्त्व पूर्ण है। अतः कल यदि इस पर विचार आरम्भ हो तो ठीक है। क्यों स्वामी जी? ठीक है न। आज देर भी हो गई! दवा......

सन्यासी—ठीक है। मैं समझ गया। आप अब कन्या को दवा आदि पिलावें। कल भी मैं यहीं नियत समय पर आऊँगा। किसी को भेजने की आवश्यकता नहीं। अच्छा जी! हां!

पण्डित—आपका धन्यवाद। (इलायची मिश्री हाथ में लेकर) ज़रा यह तो ग्रहण कीजिए। फिर......

सन्यासी—(हंस कर) लाईये, लाईये! आपने मेरी समर्पित भेंट को तो लिया न था। भला मैं आपकी को क्यों छोड़ूं। हा!

पण्डित—नहीं २। भगवन्! यह बात नहीं। आप कोई विचार न करें। अच्छा नमस्ते महाराज!

सन्यासी—नमस्ते! (कहकर आश्रम को विदा हो गए)

द्वितीय दृश्य

समय—प्रात ८½ बजे

स्थान—पंडित जी का मकान

(अगले दिन पूर्व निश्चयानुसार सन्यासी जी पंडित जी के घर पर ही आगए। स्वागत आदि के अनन्तर—)

पण्डित—भगवन्! कल आपने जाते २ मुक्ति की चर्चा आरम्भ करनी चाही थी। कृपया कहियेगा कि आप इस विषय पर क्या कहना चाहते हैं।

सन्यासी—आप कृपया बतावें कि मुक्ति क्या है? और इसकी प्राप्ति के क्या साधन हैं?

पण्डित—मुक्ति शब्द का अर्थ तो है छूटना। सब जीव दुःखों से छूटना चाहते हैं। अतः दुःखों से छूटने का नाम ही मुक्ति है, ऐसा आचार्यों का मत है।

सन्यासी—वह दुःख कौन से हैं? जिनसे छूटना चाहता है?

पण्डित—साख्य शास्त्र १।१ के अनुसार (अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः) आध्यात्मिक—शरीर सम्बन्धी पीडा, आधिभौतिक—दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक—अतिवृष्टि, अतिताप, अति शीत और मन इन्द्रियों की चचलता का होना आदि तीन प्रकार के हैं।

सन्यासी—क्या वेदो में भी मुक्ति के स्वरूप का वर्णन है?

पण्डित—हा है। सुनियेगा :—

१ यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्।

तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित ।
इन्द्राय इन्दो परिस्रव । ऋ० ९ । ११३ । ७

२ यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्रमामृतं कृधि ।
इन्द्राय इन्दो परिस्रव । ऋ० । ९ । ११३ । ९

भावार्थ—हे शुद्ध स्वरूप देव ! जिस अवस्था में अखण्ड प्रकाश है। जिस अवस्था मे आनन्द रहता है । उस न्यूनता रहित मुक्ति अवस्था में मुझ को धारण कीजिए और मोक्ष रूपी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सब ओर से कृपा-वृष्टि कीजिए ॥१॥

जिस आध्यात्मिकादि तीनों दुःखो से रहित, तीनों सुखो से युक्त अवस्था मे मुक्ति प्राप्त जीवे का अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र विचरण होता है । और जिस अवस्था मे जीव विशुद्ध-विज्ञान सम्पन्न होते हैं। हे प्रभो ! मुझ मुक्त को भी वहां स्थित कीजिएगा ॥२॥

इन मंत्रो से भी यही भाव स्पष्ट रूप से निकलता है कि उसी अवस्था का नाम मुक्ति है जिस अवस्था मे कोई दुःख, क्लेश न हो, पूर्ण आनन्द हो, जीव का स्वतंत्र विचरण हो, और सब ओर से प्रकाश ही प्रकाश हो ।

इस अवस्था को प्राप्त करना ही मानव-जीवन का प्रधान तथा अन्तिम-ध्येय है। यद्यपि आज पश्चिमीय विद्वान् अर्थ और काम को ही अन्तिम जीवन-लक्ष्य समझ कर भौतिक उन्नति के एक मात्र पुजारी बने हुए हैं । परन्तु मेरे धर्म के दिवाने ऋषि उक्त दोनों चीजो को केवल साधनमात्र मानते

हुए भी मोक्ष-प्राप्ति को अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते और समझते थे। और इसी परम-पद को पाने के लिए आयु भर यत्न करते रहे थे।

संन्यासी—आपने जो कुछ अब तक बताया मैंने समझ लिया। आपने वेद-प्रमाण द्वारा जिस मुक्ति-अवस्था का प्रतिपादन किया है वही सत्य प्रतीत होता है। और वह लोग जो मुक्ति का मनमोहना कपोल कल्पित वर्णन करते हैं वह तो मिथ्या ही प्रतीत होता है। अस्तु। अब आप कृपया अपने धर्म के अनुसार उस परम-पद की प्राप्ति के साधन भी तो बतावें जिससे मेरा कल्याण हो।

पण्डित—सुनिये भगवन्! सुनिये! मेरे आचार्य जी इस विषय पर अपने प्रसिद्ध पुस्तक स० प्र० ९वां समु० पृ० २४९ पर यों लिखते हैं—

"परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने, और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या पक्षपातरहित न्याय धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढने पढाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने और 'जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे। इत्यादि साधनोंसे मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वर-आज्ञा भंग करने आदि काम से बन्ध होता है।"

पुनः पृष्ठ २५६ पर लिखा है—

"जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् मिथ्याभाषणादि

पापकर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करें।"

"इसके अतिरिक्त, पंचकोश अन्नमयादि, तीन अवस्था जागृतादि, तीन शरीर स्थूलादि के स्वरूप और भेदों को अच्छी प्रकार जाने, और षट्क सम्पत्ति-शम, दमादि मुक्ति साधनों में सदा लगा रहे।"

सत्यार्थी—आप ने जितने साधन मुक्ति के बनाए वह सब सत्य हैं। मेरा विश्वास है कि इन साधनों का अनुष्ठाता अवश्य मुक्ति को पा सकता है। क्यों जी! इन साधनों का क्या वेदों में भी वर्णन आता है?

पण्डित—हां जी, आता है। सुनिये लिखा है—

१. तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।
य० ३१। १८

२. विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते। य० ४०।१४

३. स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं निरुणद्धि।
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते।
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति॥
अथर्व० ११।३।५४,५६॥

भावार्थ—उस प्रकाशमय परमेश्वर को जान कर ही जन्म-मरण को लांघ सकता है। निश्चय से मोक्ष के लिए इससे भिन्न अन्य मार्ग नहीं है॥ १॥

जो विद्वान् पुरुष विद्या, अविद्या के—कर्म-ज्ञान के यथार्थ

रूप को जान लेते हैं। वे महापुरुष जड़ शरीरादिकों को और चेतन आत्मा को परमार्थ के कामों में लगाते हुए, मृत्यु आदि सब दुःखो से छूट कर सदा सुख-मुक्ति-को प्राप्त होते हैं ।।२।। उक्त रहस्य (ब्रह्मज्ञान से ही मुक्ति होती है) को जानने वाला प्राणायामादि का अभ्यास करता है। जो अभागा योगाभ्यास यम नियमादि का सेवन नहीं करता, उसने मुक्ति तो क्या पानी है वह सारी आयु या तो दुःखो में व्यतीत करता है या युवावस्था में ही मर जाता है ।। ३ ।।

इस प्रकार पवित्र वेद ने ईश्वर-ज्ञान, अविद्या-विद्या का यथार्थ बोध और प्राणायाम, योगाभ्यासादि को मुक्ति का साधन बताया है । अन्य नामस्मरण, जप पुरश्चरण, गंगा-स्नान, गंगा नामोच्चारण, चरणामृतपान, काशीमरण, कण्ठी, माला, तिलक, भस्मधारण, त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष धारण, मासमद्यादि पच मकार सेवन, कार्तिक माघ-स्नान, अष्टमी व्रत, शिवलिंग पूजन, काशी, कैलाश, मक्का, अमरनाथादि की यात्रा और किसी आदर्श पुरुष को ईश्वर मान कर विश्वास करना आदि कपोल कल्पित विचारों और साधनाभासो को मेरा वेद व धर्म किसी अवस्था में भी—मोक्ष-साधन रूपेण—न स्वीकार करता है और न ही समर्थन करता है।

सन्यासी—बहुत ठीक । आपने तो बिलकुल ही साफ कर दिया। अब मेरी बिलकुल सन्तुष्टि हो गई। आपका धर्म ही वास्तव मे सत्य विचारों का समर्थक है। अब मुझे इस विषय के सम्बन्ध मे एक दो शकाएं और हैं। उनको भी कृपया आज ही समाधान कर दें, चाहे देर ही क्यो न हो जाये। सिलसिला चला

हुआ है बड़ा आनन्द आ रहा है। ठीक है न। और क्या।

पण्डित—बहुत अच्छा। अपने घर में ही बैठे हैं, बाहिर तो नहीं। जब तक इच्छा है भगवत् चर्चा चलावें। मुझे कोई आपत्ति नहीं।

सन्यासी—आप का धन्यवाद! कृपया बतावें कि मुक्ति में जीव किस प्रकार सुख-आनन्द भोगता है? क्या उस का स्थूल शरीर साथ रहता है?

पण्डित—नहीं,—(सत्यार्थ प्रकाश ९वें समुल्लास में किए वर्णन के अनुसार) उस के सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिकसंग नहीं रहता। जीवात्मा का मुक्ति में संकल्प-मात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे ही अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है। जो लोग जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं वे महामूढ़ हैं। क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्द स्वरूप सर्व व्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

सन्यासी—ठीक है। समझ में आगया। तो क्या वे जीव जिन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है, दुबारा भी जन्म-मरण में आएंगे? क्या बात है? जरा समझावें तो सही। क्योंकि बहुतों का ख्याल है कि जीव नहीं लौटता।

पण्डित—बात वास्तव में यह है कि ईश्वर न्यायकारी है। वह सान्त कर्मों का फल अनन्त कभी नहीं दे सकता। दूसरी बात यह है कि जहां २ भी 'नहीं लौटता', ऐसा लिखा है, यदि उसे गम्भीरता से विचार किया जाय तो यही आशय निकलता

है कि जब तक मुक्ति की अवधि है तब तक नहीं लौटता। अर्थात् बहुकाल के लिए मुक्ति के आनन्द को भोगता है ?

सन्यासी—मुक्ति की अवधि कितनी है ?

पण्डित—आप की इस शंका का समाधान मैं अपने आचार्य के शब्दों में करता हूं। आशा है आप सन्तुष्ट हो जाएंगे। आचार्य जी लिखते हैं—

"ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे।" (मुण्डक ३ । २ । ६) अर्थात वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति-सुख को छोड़ के संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तैंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक मास, ऐसे बारह मासों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्त काल होता है। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।"

पृ० २५४ पुनः पृ० २५६ पर इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि ऐसी मुक्ति जिससे पुनः लौट कर आना है, तदर्थ श्रम क्यों किया जाये ?—

"जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तानादि के लिए उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिए क्यों न करना ? जैसे मरना अवश्य है, तो भी जीवन के लिए उपाय किया जाता है। वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।"

सन्यासी—अब अधिक युक्तियों की आवश्यकता नहीं। मेरा सवाल हल हो चुका है। बस अब केवल मैं आपके वेद से वे प्रमाण

देखना चाहता हूं जिन में पुनरावृत्ति का स्पष्ट वर्णन हो।

पण्डित—बहुत अच्छा। लीजिए। प्रश्नोत्तर रूप में वेद में आता है :—

प्रश्न—

१ कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

उत्तर—

२ अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

(ऋ० १। २४। १—२)

भावार्थ—(प्र०) हम किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाश रहित पदार्थों में वर्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है ? कौन हम को मुक्ति का सुख भुगता कर पुनः इस संसार में जन्म देता, और माता पिता का दर्शन कराता है ॥१॥

(उ०) हम इस स्व प्रकाश स्वरूप अनादि, सदा मुक्त, परमात्मा का नाम पवित्र जानें। जो हम को मुक्ति में सब आनन्द भुगा कर पृथिवी पर पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है। वही न्यायकारी परमात्मा मुक्ति का व्यवस्थापक है ॥२॥

इसके अतिरिक्त वेद का एक और मंत्र भी सुनिये—

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥

(ऋ० १०। ६२। १)

भावार्थ—जिन महापुरुषों ने यज्ञ और दक्षिणा—निष्काम कर्मों—द्वारा अखण्ड ऐश्वर्य सम्पन्न ईश्वर के मोक्ष रूप समान गुण को प्राप्त किया है हे ऐसे उत्तम मेधायुक्त ज्ञानियो! तुम मनुष्य शरीर को पुनः लौट कर धारण करो। तुम लोगों का कल्याण हो। कहिये, महाराज! अब भी कोई शंका शेष है?

सन्यासी—बस, महाराज! आप का धन्यवाद है। अब मुझे इस विषय में कोई शंका नहीं रही। क्यों जी! आपके पास आप के आचार्य जी की वह प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश, जिसमें से आप उन का मत प्रदर्शित करते हैं, कोई फालतू है? मैं लेना चाहता हूं। वह तो अति अमूल्य ग्रन्थ प्रतीत होता है। यदि आपके पास न हो तो कृपया मंगवा अवश्य दीजिए।

पण्डित—बहुत अच्छा मैं कल लेता आऊँगा। आप उसे आदि से लेकर अन्त तक पढ़ें। आपको आर्यों के धर्म—सत्य सनातन वैदिक धर्म—का अच्छी प्रकार से बोध हो जायगा। मैं जितनी भी आप की शंकाओं का समाधान कर पाया हूं, यह उसी सद्-ग्रन्थ का प्रताप है। नहीं तो मुझ जैसे तुच्छ-बुद्धि, साधारण-जन में इतनी महत्व-पूर्ण शंकाओं के समाधान की शक्ति कहां से आती।

सन्यासी—बिल्कुल ठीक बात है। वह ग्रन्थ वास्तव में अति महत्व पूर्ण है। अस्तु, आज तो बहुत देर हो गई। इसके लिए क्षमा करना। अब आप भोजन कीजिए। अच्छा, यह तो कहिए आपकी कन्या अब ठीक तो है? बुखार तो अब नहीं होगा?

पण्डित—नहीं, आज बुखार नहीं हुआ। पं० रमेशचन्द्र वैद्य शास्त्री की दवा तो स्वामी जी बड़ी कार आमद साबित हुई। आपके

आशीर्वाद से आशा है अब बिल्कुल ठीक हो जायगी। अच्छा तो अब आप जाते हैं। कल आप यहां आने का कष्ट न कीजिएगा। सेवक स्वयं सेवा में नियत समय पर उपस्थित हो जायगा।

संन्यासी—अच्छा, अच्छा। बहुत अच्छा! लो, नमस्ते!

(कहकर सन्यासी जी ने आश्रम की ओर प्रस्थान किया)

तृतीय प्रकरण समाप्त

चतुर्थ प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम

समय—प्रात ९ बजे

(पूर्व निश्चयानुसार पण्डित जी नियत समय पर आश्रम में पहुच कर नमस्ते आदि के बाद यों बोले—)

पण्डित—कहिये, भगवन्! क्या समाचार है? आज किस विषय पर विचार करने की रुचि है? लीजिए, यह है सत्यार्थ प्रकाश।

सन्यासी—(पुस्तक हाथ में लेकर) यही वह अमूल्य ग्रन्थ है। जिस में से कभी २ आप अपने आचार्य का मत सुनाया करते हैं?

पण्डित—जी हां। यह वही है।

सन्यासी—अच्छा, तो मैं इसे नित्य प्रति पढ़ा करूंगा। मेरे हृदय में इस के प्रति बड़ी श्रद्धा पैदा हो गई है।

पण्डित—अच्छा, यह तो बडी अच्छी बात है। अब आप किसी विषय पर विचार आरम्भ करें। आज वैसे भी एक विशेष कारण से कुछ देर हो गई जान पडती है। आप की घडी में अब क्या समय है?

सन्यासी—कोई देर नहीं हुई। अभी नौ ही बजे हैं। देर हो भी गई हो तो क्या हुआ? कोई बात नहीं। आज अधिक न सही। किसी छोटे से विषय पर ही विचार कर लेते हैं। ठीक है न।

पण्डित—ठीक है। जैसी आपकी इच्छा। चलिये, आरम्भ कीजिएगा।

सन्यासी - देखिये । सब धर्मों वाले यह तो कहते हैं कि मनुष्य को मनुष्य की भलाई करनी चाहिए । परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि जो मनुष्येतर प्राणी हैं उनके साथ कैसा वर्ताव होना चाहिए ? क्या वह हमारे कृपा-पात्र नहीं हैं ? और क्या उनको मार कर खाना ही हितकर है ? इत्यादि बातों पर आप अपने पवित्र धर्म के अनुसार जैसा माना जाता हो, कृपया बतलावें । मेरा ख्याल है कि इस पर १ घण्टा भर में विचार हो जायगा ।

पण्डित—मेरा धर्म मनुष्य को मनुष्य के साथ ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के साथ उदारता तथा सहानुभूति से वर्तना सिखाता है । देखिये मेरे धर्मग्रन्थ में निम्न सु-वचन मिलता है:—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ य० ४०।६

अर्थात् जो विद्वान् जन सब प्राणियों को अपने आत्मा में और अपने आत्मा को सब प्राणियों में देखता है वह किसी से घृणा व किसी की निन्दा नहीं करता । वह सब का हितेच्छु और शुभ चिन्तक बन जाता है । इतना ही नहीं, आर्य पुरुष की वह प्रार्थना जो वह नित्य अपने भगवान् से करता है सुनिए—

१—स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु ।
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ॥ अ० १ । ३१ । ४

२—इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु
द्विपदे शं चतुष्पदे । य० ३६ । ८

भावार्थ—हमारे माता पिता का कल्याण हो । और हमारे गौ आदि

उपकारी पशुओं का, जंगम प्राणियों का तथा मनुष्यो का कल्याण हो । १ ।
आप सब जगतो के प्रकाशक हैं । आप हमारे सब मनुष्यादि दो पाव वाले, और गौ अश्वादि चार पाव वाले जो हम पर सदा उपकार कर रहे हैं, इन के लिए भी आप सदा सुख व कल्याण-कर्ता होवें । २ ।

और सुनिये, मेरा धर्म किस प्रकार सर्वत्र विश्व-प्रेम की सुगन्धी फैला रहा है । वेद मे आता है:—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । य० ३६।१८

अर्थात्—मै सब प्राणियो को मित्र की दृष्टि से देखता हू । सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । परस्पर सब मित्रता से बर्तें । कहिये महाराज ! ऐसा उदारता व सहानुभूति पूर्ण वाक्य कहीं अन्यत्र सुना व देखा है ? मैं कहां तक बताऊ । मेरे धर्म मे तो स्वार्थ के लिए किसी भी निरपराध पशु को बध करने की आज्ञा नहीं है । हा निषेध, तथा हिंसक को राज्य-व्यवस्थानुसार दण्डनीय ठहराया जाना अवश्य मिलता है । प्रथम हिंसा का निषेध सुनिये—

१—गां मा हिंसीः । य० १३ । ४३

गाय को मत मार ।

२—इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् । य० १३ । ४७

दो पाव वाले पशु को मत मार ।

३—इम मा हिंसीरेकशफं द्विशफं । य० १३ । ४८

एक खुरवाले अश्वादि को और दो खुर वाले अजादि को मत

मार। इत्यादि, अच्छा अब हिंसक को दण्ड दिये जाने के विषय में सुनिये:—

१—यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापिवृश्च। ऋ० १० । ८७। १६

२—यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
त त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसो अवीरहा ॥
अ० १ । १६ । ४

भावार्थ—जो पापी अहिंसनीय गाय के दूध को हरता है। हे राजन्! तू अपने तेज से उसका सिर काट दे। जिस से सब को नसीहत हो जावे कि गौ आदि उपकारी पशुओं को मारना उचित नहीं। १।
यदि कोई हमारी गाय की हिंसा करेगा और यदि हमारे घोड़े अथवा मनुष्य की हिंसा करेगा तो उसे हम सीसे की गोली से बेंधते हैं। जिस से हमारे मे कोई वीरों का नाश करने वाला न होवे। २।

काश! यह शिक्षाएं सर्वत्र भूगोल में फैल जावें, जिससे सब प्राणीमात्र सुख से जीयें। और मनुष्यमात्र के हृदय मे प्राणीमात्र के लिए.—

(क) उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्। (नीति)
(ख) आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्। ,,
(ग) आत्मवत् सर्व भूतेषु। ,,

के अनुसार उदारता व सहानुभूति का सद्-भाव उत्पन्न होता रहे।

संन्यासी—वाह ! वाह !! मैं क्या कहूं । मैं ही जानता हू कि इन वेद-विचारों को सुन कर मेरा हृदय कितना प्रसन्न हो रहा है । सचमुच जैसा आप का पवित्र-धर्म है, इस की तुलना संसार में अन्य धर्म नहीं कर सकता । यह बिल्कुल सत्य है । तो क्या भगवन् ! अपराधी प्राणी व आततायी को भी न मारना चाहिए ?

पण्डित—अवश्य मारना चाहिए । दण्ड देना चाहिए । आततायी के मारने के विषय में सब धर्म शास्त्र सहमत हैं ।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।

अर्थात्—मारने के लिये आते हुए आततायी को विना विचारे मारदे ।

सन्यासी—अच्छा भगवन् ! यज्ञ निमित्त पशु को मारना तो धर्म है न ? कहते हैं कि ऐसा करने से पशु स्वर्ग में जाता है । क्या यह ठीक है ?

पण्डित—बिल्कुल नहीं !! सुनिये—यज्ञ का भाव तो परोपकार है । फिर यज्ञ के निमित्त पशु को मारना तो अपकार ही हुआ । दूसरी बात यह है कि वैदिक कोप में यज्ञ का पर्याय (अध्वर) शब्द है । जिसका मतलब जिस मे हिंसा नाम को भी न हो-होता है । रही बात पशु के स्वर्ग पहुंचाने की, तो इस के ठेकेदारों से कहना चाहता हूः—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

अर्थात्—जो यज्ञ मे पशु को मार होम करने से वह स्वर्ग को

जाता है, तो यजमान अपने पितादि को मार, होम कर के स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता ? क्या वह उन्हें नरक में रखना चाहता है। अतः पशु का यज्ञ निमित्त मारना अधर्म है। वेदादि सत्य शास्त्रों मे भी कहीं ऐसा करना नहीं लिखा।

सन्य सं०—क्या वेदों में अश्वमेध गोमेध आदि का वर्णन नहीं ? क्या पूर्व समय में अश्वमेध में अश्व की और गोमेध, अजमेध आदि में गाय, बकरी आदि की बलि नहीं दी जाती थी ?

पण्डित—नहीं ? जो अर्थ आप को इनका बताया गया है वह अशुद्ध है। मैं इस के विषय में अपने आचार्य जी का मत पढ़ कर आप को सुनाता हूं। सुनिये (पुस्तक हाथ में लेकर) यह लिखा है:—

"घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार कर होम करना कहीं नही लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों मे ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह बात भी वाममार्गियों ने चलाई। (इस से पूर्व न थी) और जहां २ लेख हैं वहां २ भी वाममार्गियो ने प्रक्षेप किया है। देखो! (राष्ट्रं वा अश्वमेधः) राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देने हारा यजमान और अग्नि में घी आदि का डालना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र करना गोमेध, जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह करना नरमेध कहता है।" (स० प्र० ११वा समु० पृ० ३०१)

आशा है अब आप अश्वमेधादि के सत्यार्थ को भलीभान्ति समझ गए होंगे। केवल अब अजमेध का अर्थ बचा है। इस के लिए मैं आपको प्राचीन पण्डित विष्णुशर्मा जी—जिन्हों ने

'पंच-तन्त्र' नामी पुस्तक लिखा है—की सम्मति सुनाना चाहता हूं। वह अपनी पुस्तक के ४४१ पृष्ठ पर लिखते हैं—

"त एतेऽपि ये याज्ञिका यज्ञकर्मणि पशून्व्यापादयन्ति ते मूर्खाः परमार्थं श्रुतेर्न विजानन्ति। तत्र किल एतदुक्तं यदजैर्यष्टव्यमिति। अजा व्रीहयस्तावत्सप्तवार्षिकाः कथ्यन्ते, न पुनः पशुविशेष इति।"

अर्थात्—वह याज्ञिक मूर्ख हैं जो यज्ञ मे पशुओं को मार कर होम करते हैं। जिस श्रुति मे लिखा है कि अजो से यज्ञ करना चाहिए वहा अज का भाव सात साल पुराने चावलों का है, किसी पशु विशेष का नहीं। इसी प्रकार महाभारत में भी 'अज संज्ञानि बीजानि' लिखा है। कहिये, अब भी आप को कोई शंका है?

सन्यासी—श्रीमान्! यज्ञ-विषयक तो मेरी शकाएं मिट गईं। परन्तु मास-भक्षण के विषय में एक शंका बाकी रह गई है। लोग कहते हैं कि मास-खाने मे कोई दोष नहीं। इस से ताकत आती है। क्या यह ठीक है?

पण्डित—बिल्कुल नहीं। क्योंकि बिना प्राणी का वध किए मास मिलता नहीं। और प्राणी का वध करना पाप है। अत. मास-भक्षण स्वय ही पाप सिद्ध हो गया। पाप या दोष न मानना (ऋषि के शब्दों मे) छोकड़ापन है। वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं मास-भक्षण का प्रमाण नहीं मिलता। प्रत्युत निषेध मिलता है। जैसा कि अथर्व० ६।७०।१ में आता है:—

यथा मांसं यथासुरा यथाक्षा अधिदेवने।

अर्थात्—मास का खाना, शराब का पीना, जूआ का खेलना और परस्त्री गमन यह पाप कर्म हैं। मनुष्य को उचित है कि इन से बचे। इसी प्रकार यजुर्वेद अ० १८ मंत्र १९ मे भोज्य पदार्थों का वर्णन है। उसमें मास का लेशमात्र वर्णन नहीं है। इसके अतिरिक्त, अथर्व ६। १४०। २ में आता है कि:—

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।

अर्थात्—हे मनुष्यो! तुम अपने दांतो से चावल, जौ, माष (उडद) और तिल आदि पदार्थों को खाया करो। अपने पालक माता पितादि को मत काटो इत्यादि मंत्र प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि वैदिकधर्म की दृष्टि से मांसाहार मनुष्य के लिए सर्वथा अनुचित है। रही ताकत की बात यह भी ग़लत है। क्योंकि यदि इस मे कोई शक्ति होती तो मनुष्य इसे फलो की भान्ति रूखा ही खाता। क्यो इसको स्वादिष्ट और शक्ति शाली बनाने के लिए घृत, मसाला आदि मे पकाता है। इसके अतिरिक्त पूर्वीय और पश्चिमीय चिकित्सको ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस में वह जीवनशक्ति (विटामिन्स) नहीं है जो कि गाय के दूध, माखन, मटर और सब्जियों के अन्दर कहीं ज्यादा पाई जाती है। और इसके सेवन से मनुष्य का स्वभाव चिड़चिडा, आलस्य युक्त और हिंसक बन जाता है। दन्त रोग, आन्त रोग आदि भी अधिक होते हैं। यदि फोडा, फुन्सी हो जाय तो जल्दी २ भरते नहीं। इत्यादि अनेक दोष हैं।

सन्यासी—आपने जो कुछ कहा उस पर तो मुझे कोई ऐतराज नहीं। लेकिन इतिहास के पढ़ने से विदित होता है कि हमारे प्राचीन राजा लोग और विशेषकर श्री महाराजा रामचन्द्र जी शिकार

करते थे। बताइये उसका क्या प्रयोजन था ?

पंडित—आप को ज्ञात होना चाहिए कि धर्मशास्त्रों में प्रजा-पालन ही क्षत्रियों—राजाओं—का परमधर्म लिखा है। इससे सिद्ध हुआ कि यदि कोई हिंसक प्राणी शेर चीता आदि प्रजा को हानि पहुंचाएं तो राजा का धर्म है कि उन दुष्ट प्राणियों का शिकार करे अर्थात् नाश करे या दूर भगाए। और यदि राजा ऐसे ही निष्प्रयोजन किसी जानवर का शिकार करता है, तो वही धर्म शास्त्र उस की इस क्रिया को निन्दित तथा नाश का कारण बतलाता है। इसके लिए देखिये 'मनु॰' अ॰ ७ श्लोक ४७-५० तक देखने योग्य हैं। रही बात महाराज राम के शिकार की। इसके लिए निवेदन है कि जहां उन्हों ने मृग का शिकार किया है वहां खाने का कहीं वर्णन नहीं मिलता। उस प्रकरण का मुख्य श्लोक रामायण में इस प्रकार मिलता है—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो मे हरति मनः।
आनयैनं महाबाहो ! क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥

अर्थात्—सीता जी ने दूर से सुन्दर मृग को देख कर कहा कि हे पतिदेव ! कृपा करके इस मन को लुभाने वाले हरिण को पकड लावें। यह हमारे क्रीडा—मन बहलाव—के लिए काम मे आयगा! इत्यादि। इससे पता चलता है कि राजा लोग प्रजा-हित के लिए अथवा मन बहलाव के लिए ही शिकार करते थे, खाने आदि के लिए नहीं।

संन्यासी—अब मैं समझा। आप ने बडी कृपा की। थोड़े से शब्दों में ही सारी शंका को हल कर दिया। वास्तव में मांसाहार,

मनुष्याहार नहीं हो सकता। हमारे भाई तो खामखाह इस राक्षसी-वृत्ति को अपना रहे हैं। (घड़ी देख कर) ओ हो ! लो जी समय तो ११ बजने को हैं, पता ही नहीं चला। क्यों न हो। जब बातें ही आनन्द की हों। अच्छा तो अब आप चलने की तैय्यारी करें। घर में प्रतीक्षा हो रही होगी। देखना अपनी कन्या का हाल आज किसी समय किसी शिष्य द्वारा अवश्य भिजवाना, जिस से मन को शान्ति हो। अच्छा, नमस्ते! अब आप जाईये।

पण्डित—नमस्ते भगवन्! नमस्ते !!

(पण्डित जी का घर को प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

समय प्रातः ८ बजे

स्थान—देवाश्रम—चबूतरा

(नियत समय पर पण्डित जी पधार कर, सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर स्वाध्याय में बैठे ही थे कि सन्यासी जी आ पहुंचे और बोले—)

सन्यासी—नमस्ते भगवन्! नमस्ते! कहिये अब तो सुपुत्री ठीक है न ?

पण्डित—बिल्कुल ठीक है। भगवान् की दया है। आप का आशीर्वाद है।

संन्यासी—अजी! ईश्वर की ही दया चाहिये। वही सब का रक्षक-पालक और परम सहायक है।

पण्डित—हां जी, वही है। अच्छा, तो आज किस विषय पर विचार होगा।

संन्यासी—आज मैं चाहता हूं कि आप अपने धर्म के अनुसार सदाचार-शिक्षा पर प्रकाश डालें। क्योंकि अन्यमतों को तो मैंने देखा व सुना है, मुझे इस शिक्षा का जो जीवन की आधार-शिला है अभाव ही अभाव दिखाई दिया है।

पण्डित—आप अनुभवी हैं। ठीक ही कहते होंगे! परन्तु वैदिक धर्म में सदाचार-शिक्षा को अत्युच्च स्थान प्राप्त है, मैं ऐसा समझता हूं। इस शिक्षा का आरम्भ बाल्यावस्था से होना चाहिए, ऐसा मेरे आचार्य मानते थे। जैसा कि आपने अपने प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश २ य० समु० में लिखा है।

"धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।" (पृ० २३)

"बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिस से सन्तान सभ्य हों। और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब उन की माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे,…… जब वह कुछ २ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, पिता, माता, विद्वान् आदि से भाषण, उन से वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें, जिससे उनका कहीं अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय विद्याप्रिय और सत्संग मे रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता नपुंसकता होती है और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इस से उस का स्पर्श न करें। सदा सत्य भाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्न वदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें। …… "उसके पश्चात् जिन से अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा कुटुम्ब, बन्धु-भगिनी, भृत्य आदि से कैसे २ वर्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावे। जिन से सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे। और जो २ विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्ति-जाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें, जिस से भूत प्रेतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।" (पृ० २५)

"देखो जिस के शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उस को आरोग्य, बल बुद्धि, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इस के रक्षण मे यह रीति है कि विषयो की कथा, विषयी लोगो का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिस को प्रमेह रोग होता है, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, पराक्रम, साहस, धैर्य-बल आदि गुणों से रहित हो कर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे, तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त न हो सकेगा।" (पृ० २६)
यह है मेरे आचार्य की बताई हुई सदाचार—उत्तम चाल चलन, उत्तम विचार और उत्तम व्यवहार—की शिक्षा, जिसकी माता, पिता, बाल्यावस्था से नहीं २ गर्भावस्था से ही उत्तम-रीत्या शिक्षा कर दिया करते थे। तब सन्तान के श्रेष्ठ, आज्ञा-कारिणी और सभ्य धर्मात्मा बनने में क्या कभी सन्देह हो सकता है?

सन्यासी—धन्य हो! जो मैं जानना चाहता था, आपने अच्छी रीति से जना दिया। सचमुच आप के आचार्य की बताई हुई शिक्षा का एक २ शब्द हृदय में बिठाने योग्य और क्रियात्मक रूप देने योग्य है। सचमुच ऐसी सदाचार की शिक्षा से ही जाति के नौनिहालो का जीवन आदर्श एवं भविष्य उज्ज्वल बन सकता है। काश! यह शिक्षा सर्वत्र भूगोल मे फैले और सब

आर्य नर-नारी इसके अनुसार आचरण करें। तो क्या भगवन्! इस शिक्षा का कुछ वर्णन वेद में भी है ?

पण्डित—क्यों नहीं। जब कि वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, तब यह सदाचार शिक्षा सम्बन्धी सत्य विद्या क्या उस में से छूट सकती है ? जरा आप सोचियेगा तो! देखिए वेद में आता है कि—

परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वामा सुचरिते भज।

य० ४। २८

भावार्थ—शिष्य-गुरु से, पुत्र-माता-पिता से, छोटा बड़े से और सेवक स्वामी से सदा यह निवेदन करता रहे कि हे मेरे पूज्य नेता! आप कृपा करके मुझे दुष्टाचरण से पृथक् करके उत्तम उत्तम धर्माचरण युक्त व्यवहार मे अच्छे प्रकार स्थापन कीजिएगा।

पुन यजु० अ० ६ म० ६ मे उपदेश है:—

अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानुभ्राता
सगर्भ्योऽनुसखा सयूथ्यः।

अर्थात्—इस संसार मे माता, पिता, बन्धुवर्ग और मित्रवर्ग को चाहिए कि वह अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे कर ब्रह्मचर्य करावें, जिस से वह सन्तानं गुणवान् हो।

आगे फिर इसी यजु० अ० ६ मन्त्र १४ में लिखा—

वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि, चक्षुस्ते शुन्धामि
श्रोत्रं ते शुन्धामि, नाभिं ते शुन्धामि, मेढ्रन्ते शुन्धामि
पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि॥

भावार्थ—(ऋषिभाष्य से) गुरु और गुरुपत्नियो को चाहिए कि वेद, उपवेद अग और उपागो की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्त -करण और मन की शुद्धि और शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियो को उत्तम चरित्र व अच्छे २ गुणो मे प्रवृत्त करावे।

इस के अतिरिक्त वेदों में तथा धर्म शास्त्रों में अति स्पष्ट रूप से उन व्यसनों—मांस, मदिरा, तम्बाकू आदि नशीली बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली तमोगुण वाली चीज़ो का सेवन, शृगार, व्यर्थ नाच (भाण्डो के तुल्य) जूआ आदि चरित्रनाश—का निषेध किया गया है।

यही मेरे धर्म की सदाचार-शिक्षा है। आशा है, स्वामिन्! आप को इस से सन्तोष हो गया होगा।

संन्यासी—मुझे निस्सन्देह वेद-वचनों को सुन कर अति सन्तोष हुआ है। आप के धर्म के सदृश सदाचार-शिक्षा, अन्य मतावलम्बियो को स्वप्न में भी नहीं आ सकती। यह बात मैं सविश्वास, डके की चोट कह सकता हू। श्रीमान् जी! अब तक मैं नवीन वेदान्ती था। परन्तु आज से आप के धर्म का अनुयायी होता हूँ। भगवान् ही इस बात का साक्षी है। मैं जीवन भर आपका आभारी ही रहूंगा। मुझे इसी धर्म से निस्सन्देह सुख-शान्ति व कल्याण की प्राप्ति होगी। अब मैं आगे आप को कष्ट नहीं दूंगा। सत्यार्थ प्रकाश तो मैंने आरम्भ किया हुआ है। जब २ कोई शंका पैदा होगी तब २ ही मैं आप को कष्ट दिया करूगा। इस सप्ताह जो आप को

मैंने कष्ट दिया उसके लिए धन्यवाद पूर्वक क्षमा चाहता हूं। आपने बड़ी ही कृपा की है।

पण्डित—कृपा किस बात की महाराज ? मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। परमात्मा ने उस का यह फल दिया है कि आप सरीखे महात्मा मेरे धर्म—वैदिक-धर्म—से प्यार करने लगे। यह मेरा आकर्षण नहीं ! यह आकर्षण वास्तव में वेदोक्त सत्य सनातन-धर्म का है। भगवन् ! अभी तो आप ने थोड़ा सा ही सुना है। यदि और सुनेंगे तो आप के सामने इस धर्म की कई नई विशेषताएं आएंगी। जिनसे मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति के साथ २ सामाजिक उन्नति भी होती है। अस्तु ! अब चूंकि आप आगे चर्चा नहीं करना चाहते। इसी लिये मुझे भी एतदर्थ आप से आग्रह नहीं करना चाहिये। मुझे आप क्षमा करें यदि कोई मुझ से आप की शान में जान-अजान अप-शब्द निकल गया हो।

सन्यासी—आप अति श्रेष्ट पुरुष हैं। परमात्मा आप को और विद्या व बुद्धि-बल प्रदान करें, जिस से आप ऋषि के मिशन के प्रचार में सफल हों। और मेरे जैसे सहस्रों अन्धविश्वासियों का सुधार हो। यही मेरे मन की कामना है। इत्योम्।

पण्डित—भगवन् ! आप की कामना अवश्य परमात्मा पूर्ण करेंगे। अच्छा, नमस्ते ! आज्ञा।

(पण्डित जी का घर को प्रस्थान)

चतुर्थ प्रकरण समाप्त

पांचवां प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम का शिवालय

समय—दोपहर बाद २ बजे

(सदा की भांति प० धर्मज्ञ जी स्नान, सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर घर को जाने ही वाले थे कि विमलानन्द सन्यासी एक वृद्धा माता—जो शिवालय की पुजारिन थी—को साथ लिए हुए वहां आ पहुंचे, और कहने लगे—)

संन्यासी—पण्डित जी महाराज ! जैसे आप ने अपने सद्-विचारों से मुझे उपकृत किया है वैसे ही यह माता जी हैं। बड़े सरल स्वभाव की हैं। कल यह मुझे मिलीं। मैंने गत सप्ताह की चर्चा और उससे प्राप्त हुए लाभ का जिक्र किया, तो यह सुन कर अति प्रसन्न हुईं। और कहा कि मेरे भी कुछ संशय हैं। कृपया उन से मिटवाओ तो भगवन् ! अब आप विचार लें कि क्या आप समय दे सकते हैं ?

पण्डित—हां हां ! अवश्य मैं तो यही चाहता हूं कि चर्चा लगातार होती रहे। और मैं अपने जीवन से जन साधारण की तुच्छ सेवा का अवसर पाता रहूँ। (माता जी से) माता जी ! मेरा सौभाग्य है कि मुझे आप की सेवा का सु-अवसर मिल रहा है। मैं चाहता हूं कि बाद दोपहर २ बजे आप की सेवा में उपस्थित होऊं। आप ने इतना करना कि आस-पास की माताओं, बहनों को बुलवा लेना, ताकि धर्म चर्चा से अच्छा

है उन को भी लाभ पहुंचे। ठीक है ना, माता जी ?

माता—ठीक है बेटा ठीक है। इस से उत्तम और क्या बात हो सकती है ? मैं सब देवियों को सूचित कर देती हू। इस महती कृपा के लिए आप को मैं धन्यवाद देती हूँ।

पंडित—कृपा किस बात की। मेरा तो काम ही यही है। मैं वैदिक धर्म का प्रचारक हूं। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि इस सत्य सनातन-धर्म की महिमा का कुछ आप लोगों में भी प्रचार हो जाय। अच्छा अब आराम करें। २ बजे ठीक पहुंच जाऊंगा।

(पंडित जी का तथा माता जी का अपने २ स्थानों को प्रस्थान)

(पुन २ बजे प० जी का शिवालय में पधारना)

पंडित—माता जी ! नमस्ते ! सब तैय्यारी हो गई क्या ?

माता—हां जी बिल्कुल सब तैय्यारी है। देवियां भी बहुत काफी संख्या मे आगई हैं। कृपया पधार कर अनुगृहीत करें। आप की प्रतीक्षा हो रही है।

पण्डित—बहुत अच्छा माता जी लो चलो फिर।

(दोनों चले और सभा स्थान पर पहुचे। प० जी को उच्चासन पर बैठा गले में पुष्पमाला पहिना कर माता जी यों बोली—)

माता—पण्डित जी महाराज ! आप हमे यह बतलावें कि आप के पवित्र धर्म मे भी क्या हमें पैर की जूती, शूद्रा, आत्म शून्य, वेद की अनधिकारिणी और खेतियां आदि बताया गया है ? क्यों कि अब तक जितने और धर्म वाले हैं हम ने देखे व सुनें, वह सब हमे ऐसे ही समझते हैं। इसलिए आप अपने धर्मा-नुसार स्त्री जाति की स्थिति पर कृपया आज प्रकाश डालें।

पण्डित—हमारा धर्म वैदिक धर्म है, यह तो आप सब जानती ही हैं न ? बहनो ! हमारे धर्म पुस्तक चार वेद हैं यह भी आप को पता होगा। और आपने आर्य समाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का नाम भी अवश्य सुना होगा। हमारे धर्म में स्त्री जाति को बहुत ऊंची दृष्टि से देखा गया है। हमारा धर्म स्त्री को हड्डी से पैदा हुआ २ पैर की जूती या खेतियां नहीं मानता। अपितु कहता है कि स्त्री गृहलक्ष्मी, गृह दीपिका, पूज्या और शिरोवेष्टन—पगडी—की भाति सन्मान का चिन्ह है। बहिनो ! सुनो वेद का एक मंत्र सुनाऊं—

इडे रन्ते हव्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि० । य० ८। ४३

अर्थात्—हे देवी ! तू ताडना के योग्य नहीं है। न आत्मा से विनाश को प्राप्त होने वाली है। अर्थात् आत्मायुक्त है। श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान् है। प्रशंसनीय गुण युक्त है। स्वीकार करने योग्य है। मनोहर स्वरूप है। स्मरण करने योग्य है। आनन्द देने वाली है। वेद जानने वाली है। प्रशसा करने योग्य है। और प्रशंसित विज्ञान वाली है। इत्यादि सब तेरे गुणों के कारण गौणिक नाम हैं। माताओ ! कहो इस से अधिक स्त्री जाति के प्रति सन्मान की भावना और क्या हो सकती है ? इतना ही नहीं और भी सुनो—

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥

अ० १४। १। ४३

भावार्थ—जिस प्रकार बलवान् समुद्र ने नदियों का साम्राज्य उत्पन्न किया। इसी प्रकार हे देवी! तू पति के घर जाकर महाराणी बन कर रह।

इसी प्रकार अथर्व १४। १। ४४ मे भी कहा है कि हे देवी तू अपने ससुर आदि के बीच देवरों के बीच और ननन्द और सासु के साथ भी महाराणी के पद पर स्थित हो कर रह। इसके अतिरिक्त स्त्री को ऋ० ८। ३१। ६ तथा अथर्व ६। १२२। ५ के अनुसार यज्ञ का अधिकार है। ऋ० १०। १०६। ४ के अनुसार यज्ञोपवीत का पूर्ण अधिकार है। य० अ० १६ मं २४ के अनुसार स्त्री का युद्ध क्षेत्र मे जाना सिद्ध है। य० अ० १० मं० २६ मे स्त्री का न्यायाधीश होना और राजनीति की उत्कृष्ट विद्या का सीखना अति स्पष्ट रूप से वर्णित है। य० अ० १६ मं० ९३ के अनुसार स्त्री का योगाभ्यास सीखना सिद्ध होता है। इतना ही नहीं एक वैदिक धर्म में दीक्षित स्त्री के मन के भाव सुनने योग्य हैं। सुनो बहिनो! वेद-मन्त्रों द्वारा सुनाता हूं:—

१—अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
मममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥

ऋ० १०। १५६। २

२—मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

१०। १५६। ३

भावार्थ—मैं झण्डा हूं। ज्ञान वाली हूं। मैं सिर हूं। घर मे प्रधान

हूं। मैं तेजस्विनी बोलने वाली हूं। मेरा पति मुझ शत्रुनाशनी के ज्ञान और कर्म के अनुसार व्यवहार करता है।१।

मेरे पुत्र शत्रुघाती हैं। मेरी कन्या तेजस्विनी है। मै विजयिनी हूं। पति के हृदय में मेरा उत्तम यश है।२।

माताओ! बहिनो! यह है सन्मान जो वैदिक धर्म में स्त्री जाति को दिया गया है। सचमुच, आप को स्त्री जाति की ऐसी प्रतिष्ठा, मान अन्य किसी पन्थ या मत मे नहीं मिलेगा। वैदिकधर्म के मानने वाले आर्य भाईयो की वकालत का ही यह फल है कि आज सर्वत्र स्त्रियो की शिक्षा व सुधार के लिए सभी मतवाले प्रयत्न कर रहे हैं। पाठशालाएं खोल रहे हैं। कहीं महिला विद्यालयो की स्थापना हो रही है। कहीं कुछ और कहीं कुछ हो रहा है। बहिनो! साय प्रात. उस आचार्य को भी धन्यवाद दिया करो जिसने आप की वकालत करते २ अनेक बार विप-पान किया और अपमान सहे। देखो उन्हो ने आपके वेदाधिकार के विपय में लिखा है—

"जो वेदादि शास्त्रो को न पढी होवे तो यज्ञ मे स्वरसहित मन्त्रो का उच्चारण और सस्कृत भाषण कैसे कर सके। भारत वर्ष की स्त्रियों में भूपण रूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रो को पढ के पूर्ण विदुपी थीं, यह शतपथ ब्राह्मण मे स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुप विद्वान और स्त्री अविदुपी और स्त्री विदुपी और पुरुप अविद्वान् हो तो नित्यं प्रति देवासुर संग्राम घर मे मचा रहे। फिर सुख कहां?" (पृ० ७५)

"जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र-सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिए बनाए हैं वैसे ही वेद भी सब के

लिए प्रकाशित किए हैं।" (पृ० ७४)

इस के अलावा आचार्य जी ने माताओ! यह वेद का प्रमाणभी दिया हैं। सुनो—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

अर्थात्—जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हो के, युवती, विदुषी अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं। वैसे ही कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को प्राप्त होवे।

इस में कन्याओं को देखो बहिनो! वेद के पढ़ने की स्पष्ट आज्ञा है। केवल आज्ञा ही नहीं। प्रत्युत, लोपामुद्रा, सावित्री सूर्या, विश्ववारा उर्वशी, सार्पराज्ञी कद्रू, सरस्वती आदि अनेक पूर्वज माताएं ऋषिका बनीं। इन सब ने वेदाभ्यास करके विद्या और तपस्या पूर्वक वैदिक काल की इस सर्वोत्कृष्ट ऋषि पदवी को पाया था। ऐसी अवस्था में कौन साहस पूर्वक कह सकता है कि स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं। कौशल्या माता और सीता महारानी वेद मन्त्रों से ही नित्य यज्ञ अग्निहोत्र और सन्ध्या किया करती थीं। इस ऐतिहासिक प्रमाण से भी कोई क्या इन्कार कर सकता है? अस्तु अब मैं अन्त में आप को धर्म शास्त्र के प्रथम आचार्य भगवान् मनु जी की सम्मति भी सुनाता हूं। सुनिये महाराज मनु लिखते हैं:—

१—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। अ० ३।५६

२—पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥
अ० ३ । ५५

३—तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥
अ० ३ । ५६ ।

भावार्थ—जिस घर या कुल में स्त्रियो का सत्कार होता है, उस में विद्या युक्त पुरुष होके देव सञ्ज्ञा धरा के आनन्द से क्रीडा करते हैं । और जिस घर मे स्त्रियो का सत्कार नहीं होता, वहां सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं । १ ।

पिता, भाई, पति और देवर इन को सत्कार पूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रक्खें । जिन को बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसा करें । २ ।

इस लिए ऐश्वर्य की कामना करने हारे मनुष्यो को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयो मे भूषण, वस्त्र और अन्नादि से स्त्रियों का नित्य प्रति सत्कार करें । ३ ।

बहिनो ! इस प्रकार से हमारे धर्म मे स्त्रियों को सन्मान-पूजा और उच्चता का दर्जा दिया गया है । क्या इसे सुन कर भी आप को कुछ शंका है ? कहो माता जी ?

माता—धन्य हो, धन्य हो ! आपने तो महाराज जी ! बहुत अच्छा समझाया सुन कर हमे यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि जैसी उत्तम स्थिति हमारी आप के धर्म मे बतलाई गई है, अन्यत्र नहीं है । आपका उपदेश अत्युत्तम है । सब पर

प्रभाव पड़ा है। अब आप देखेंगे कि यह सब देवियां आप के उपदेश सुनने के लिए सदा स्त्री समाज में आया करेंगी। अब भोजनादि का समय है। देर भी बहुत हो गई है। अतः आज का सत्संग समाप्त किया जाता है। आप अब विश्राम करें। कष्ट के लिए क्षमा चाहती हैं। हम सब की यह हार्दिक इच्छा है कि कल भी आप इसी प्रकार अमृतवर्षा कर अनुगृहीत करें।

पण्डित—मैं आप सब माताओं और बहिनों का धन्यवाद करता हूं कि आप लोगों ने हमारे धर्म के अनुसार स्त्री जाति की स्थिति को अच्छी प्रकार समझ लिया है। मुझे इस बात का दुःख है कि मैं पंजाबी नहीं जानता। हो सकता है कि आप को किसी किसी बात के समझने में कठिनाई उपस्थित हुई हो। इस के लिए आप सब मुझे क्षमा करें। मैं कल भी जैसी कि आप सब की इच्छा है, आप के दर्शन करूंगा और तुच्छ सेवा करूंगा।

सब स्त्रियां—बड़ी खुशी की बात है। हम सब नियत समय पर अवश्य आएंगी। औरों को भी साथ लाएंगी। माता जी! इस प्रकार की अमृतवर्षा तो यहां आप हर रोज ही कराया करो। आज का उपदेश सुन कर तो हमें बहुत ही लाभ हुआ है। हम महाराज जी को धन्यावाद देती हैं।

माता—अच्छा देवियो! जरा ठहरो। आरती व शान्ति पाठ करके जाना।

(आरती व शान्ति पाठ, सभा समाप्त, प० जी का घर को प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—देवाश्रम का शिवालय

समय—दोपहर बाद २ बजे

(पूर्व निश्चयानुसार प० धर्मज्ञ जी नियत समय पर पधारे, तब सब उपस्थित देवियां एक साथ बोलीं—)

उपस्थित देवियां—महाराज जी ! नमस्ते ! आप ने बड़ी कृपा की। धन्यवाद है।

पण्डित—माताओ ! बहिनो !! आप का धन्यवाद है कि जो आज पुनः आप ने पधार कर सत्संग की शोभा बढाई। आज मैं चाहता हूँ कि आप के सन्मुख वैदिक धर्म—आर्य समाज—के सम्बन्ध मे पाधा-पोपो, पुरोहितो, द्वारा—जिनका इस प्रकाश-युग मे स्वार्थ पूर्ण नहीं हो रहा—फैलाई गई भ्रान्तियों का सुधार करूं। मुझे आशा है कि आप सब ध्यान पूर्वक सुनेंगी। मेरी यह भी इच्छा है कि आज आप अपनी उन शंकाओं को रक्खें जिन के सम्बन्ध में आप को वैदिक धर्म की ओर से समाधान की इच्छा हो। मुझे विश्वास है कि आप इस से सहमत होंगी। क्यो माता जी ! ठीक है न ?

माता—कहो बहिनो ! ठीक है ? आप ने महाराज जी की बात सुन ली। अब जो २ शङ्का जिस किसी बहिन को हो वह निःसकोच हो रक्खे।

देवियां—माता जी ! बात तो ठीक है। परन्तु हमारे में कौन है जो महाशय जी के साथ प्रश्नोत्तर कर सके।

एक बोली—कोई डर नहीं। जिसने जो शंका करनी हो करे।

दूसरी—अहा ! वह देखो सामने महाशय रामनाथ जी की सुपुत्रियां जो कि अच्छी लिखी पढ़ी हैं आरही हैं। उन मे माता जी ! एक प्रभाकर पास है। एक शास्त्री और तीसरी सब से छोटी कन्या मिडल मे पढ रही है। उनसे कहना चाहिए कि वह शंकाएं करें।

सब बोली—बिल्कुल ठीक है। कहां हैं ? कहां है ? वह आगई, वह आगई।

माता—बहुत अच्छा हुआ पुत्रियो ! यहां आगे आजाओ। (लडकियों के बैठने पर) देखो सुनो ! आज तुम महाराज जी से जो २ पूछना चाहती हो पूछ सकती हो। महाराज ने शंका करने की आज्ञा प्रदान की है। तुम लिखी पढी हो। अतः तुम शंकाएं रक्खो। जिन के समाधान सुन कर हम सब को अतिलाभ हो। और साथ ही वैदिक धर्म के सत्य व सुन्दर विचारो से परिचय प्राप्त हो।

प्रेमा—(म० रामनाथ की बड़ी पुत्री जो शास्त्री पास है) माता जी ! आज्ञा है ?

माता—हां बेटी ! हां, आज्ञा है।

प्रेमा—अच्छा पण्डित जी ! आप अपने आप को आर्य कहते हैं। बाकी सब लोग (आपके विचार के थोड़ेसे लोगों को छोडकर) अपने आप को हिन्दू कहते हैं। अब आप बतलावे कि यह क्या बात है ? आया, आप राहे रास्ति पर हैं या वह लोग। कपोल कल्पित शब्द कौन सा है ?

पण्डित—देवी जी ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। इसके सम्बन्ध में मैं आप सब को बतलाना चाहता हूं कि वेद से लेकर संस्कृत की छोटी से छोटी पुस्तक गोपाल सहस्रनाम तक किसी भी पुस्तक में हिन्दू शब्द नहीं है। यदि यह शब्द संस्कृत का होता अवश्य किसी न किसी पुस्तक में मिलता। वास्तव में यह शब्द फारसी भाषा का है। फारसी के कोश में उक्त शब्द के अर्थ, काला चोर, डाकू रहज़न आदि लिखे हैं। मुसलमानों ने अपने शासन काल में हमारे लिए (चिढ़ाने के तौर पर) इस शब्द का प्रयोग किया था। हम इस के अर्थ को जानते न थे। अतः इसे नया शब्द समझ कर भूल से अपने नाम, जाति व धर्म के साथ जोड़ लिया। अब ऋषि दयानन्द जी महाराज की कृपा से पुनः उस वेदोक्त शास्त्रोक्त और इतिहाससमर्थित, पूर्वोक्त शब्द आर्य का प्रचार हुआ। जिस के अर्थ श्रेष्ठ, सदाचारी सत्यवादी और धर्मात्मा आदि हैं। देखो वेदों में 'आर्य' शब्द ५० से भी अधिक बार आया है। वेद का कोष निरुक्त है, जो कि महर्षि यास्क मुनि का बनाया हुआ है। उस में आर्य शब्द का अर्थ 'ईश्वर पुत्र' लिखा है। अर्थात् जो ईश्वर की वेदोक्त आज्ञाओं—मांस का न खाना, शराब का न पीना, जूआ न खेलना, व्यभिचार न करना, चोरी न करना, मिथ्या-भाषण न करना आदि—का भली भांति पालन करता है, वही आर्य है। यह गुण जिस भी स्त्री पुरुष में हो, सब आर्य हैं। एक मुसलमान या ईसाई भी उक्त गुणयुक्त होने से आर्य कहला सकता है। वेद में तो स्पष्ट आज्ञा है कि—

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।

अपघ्नन्तो अराव्णः । ऋ० ६ । ६३ । ५

भावार्थ—तुम आलसी न बनो । वैदिक कर्मों के करने व कराने वाले बनो । कंजूस और पापियों को परे हटाते हुए-सुधार करते हुए संसार के लोगों को वेदानुयायी ईश्वर भक्त-आर्य-श्रेष्ठ बनाओ । यह वेद का प्रसिद्ध प्रमाण है ।

इस के अतिरिक्त रामायण में जहां वाल्मीकि ऋषि ने श्रीराम जी के अनेक गुणों का वर्णन किया है, वहां लिखा है:—

आर्यः सर्वसमश्चैव । बालकाण्ड

अर्थात्—श्री राम जी आर्य-श्रेष्ठ हैं और सब में सम-दृष्टि से बर्तने वाले हैं । इसी प्रकार महारानी सीता जी जब भी अपने पति जी को बुलाती थीं । तो आर्य-पुत्र नाम से पुकारती थीं । किष्किन्धा काण्ड, सर्ग ४ में श्री लक्ष्मण जी ने श्री राम जी को जब कि वह सीता-वियोग में व्याकुल हो रहे थे, कहा था:—

स्वास्थ्यं भद्र भजस्वार्य त्यजतां कृपणामतिः ।१२०।
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।१२१।

भावार्थ—हे आर्य ! आप अपनी उदासी को छोड़ कर स्वस्थता को प्राप्त करो । क्योंकि उत्साह से बढ़कर अन्य बल संसार में नहीं है ।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि रामायण काल में भी आर्य शब्द का श्रेष्ठ अर्थों में प्रयोग होता था हिन्दू शब्द का नहीं ।

महाभारत में भी एक स्थान पर आता है:—

कर्तव्यमाचरन्नित्यमकर्तव्यमतनाचरन् ।
यस्तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः ॥

भावार्थ—जो यज्ञादि कर्तव्य कर्मों को तो करता है और अवैदिक कर्मों को कभी नहीं करता । इसके साथ २ पूर्वज आप्त पुरुषों के आचरण के अनुसार आचरण करता है वही आर्य कहलाता है ।

और गीता मे देखो, आप को स्मरण होगा जब अर्जुन अपने सम्बन्धियों को समर-भूमि में अपने मुकाबिले पर देखता है, तब शस्त्र फैंककर कहता है कि मै इन का खून नही वहाना चाहता । भीख माग कर निर्वाह कर लूगा । तब अर्जुन के इन कायरता पूर्ण भावों को सुन कर श्री कृष्ण जी महाराज कहते हैं:—

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन । गीता २ । २

भावार्थ—यह तेरा विचार आर्यों को शोभा देने वाला, स्वर्ग का हेतु और कीर्ति को स्थिर रखने वाला नहीं है ।

इसी प्रकार मनु० अ० ९ श्लोक २५३ मे आता है:—

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥

अर्थात्—वही राजा स्वर्ग में जाते हैं जो 'आर्यवृत्ताना साध्वाचाराणाम्—श्रेष्ठ आचार वालो की रक्षा करते हैं ।

पुनः अ० ४ श्लोक १७५ में कहा है—

सत्यधर्मार्यवृत्तेपु शौचे चैवारमेत्सदा ।

अर्थात्—सदा आर्य आप्त पुरुषो के आचरणानुसार रमण करे ।

इतना ही नहीं, और सुनिये! आज तक भी पाधा लोग प्रत्येक शुभ-कर्म के समय सङ्कल्प में—'आर्यावर्त्ते भरतखण्डे' ऐसा पढते हैं। इसके अतिरिक्त काशी के प्रसिद्ध मन्दिर विश्वनाथ के बाहिर शिला पर सदियों से लिखा हुआ यह शब्द अब तक मिलता है कि:—

आर्यधर्मेतराणां प्रवेशोऽत्र निषिद्धः।

कहां तक बताया जावे बहिनो! मुझे आशा है अब आप को उक्त अनेक प्रमाणों से विदित हो गया होगा कि आर्य शब्द ही प्राचीन वेदोक्त और शास्त्र-सम्मत है। हमारे पूर्वज इसी शब्द को व्यवहार में लाते थे। हिन्दू शब्द न वैदिक है और न ही सुन्दर भाव प्रकाशक है। अपितु इस पर अब और कोई शंका हो तो कहिएगा।

प्रश्न—आप के कथन से मेरी शंका बिल्कुल मिट गई। वास्तव में आर्य शब्द ही उत्तम तथा वेदोक्त होने से ग्रहण करने योग्य है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि हमारे किसी पूर्व प्रामाणिक पुस्तक में हिन्दू शब्द नहीं है। (बहिनों से) बहिनो! आपने भी सुन लिया है। सुनने से तभी लाभ है जब कि आप आगे को अपने आप को आर्य शब्द से विभूषित करेंगी। यही शब्द सुन्दर और सार्थक है। इसी के द्वारा संसार में एकता और उससे प्रकट होने वाले गुणों के धारण करने से सुधार हो सकता है। अच्छा पण्डित जी! आप का धन्यवाद! पहली शंका मेरी हल हो गई है। अब आप बतलावें कि आपके धर्म पुस्तक कौन से हैं। मैंने सुना है कि आप गीता, महाभारत

पुराणादि को नहीं मानते, सब का खण्डन ही खण्डन करते हैं। क्या यह सत्य है?

पण्डित—सुनो देवी जी! हमारे धर्म पुस्तक चार वेद—ऋग्-यजु-साम अथर्व हैं। यह ईश्वर की पवित्र वाणी है। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य मात्र की भलाई के लिए परमात्मा ने चार ऋषि अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा द्वारा प्रकाशित किए हैं। इन में मनुष्योपयोगी सब उपदेश व शिक्षाएं हैं। इन मे मिलावट नहीं है। अब तक बिन्दु विसर्ग का भी भेद नहीं पडा। यह हमारे लिए स्वतः प्रमाण हैं। अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण। हम लोग उन्हीं ग्रन्थो को मानते हैं जो वेदानुकूल हैं। जो वेद विरुद्ध हों चाहे वह गीता हो या पुराण हो अथवा किसी ऋषि मुनि का निर्मित ग्रन्थ भी क्यो न हो नही मानते। गीतादि में जो २ भाग वेदानुकूल है वह सब हमें मान्य है। इस के अतिरिक्त गीता पर मेरे आचार्य जी की जो सम्मति है, उसे भी मैं सुनाये देता हूँ—

"एकबार सम्वत् १६२४ मे कर्णवास में ठा० गोपाल सिंह जी के कारिन्दा बा० केसरीलाल जी कायस्थ ने प्रश्न किया कि भगवन्! गीता कैसी पुस्तक है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "७ वां ६ वा, १० वा ११ वा १२ वां अध्याय तो समग्र प्रक्षिप्त हैं। शेप मे किसी में २ किसी में ५ श्लोक प्रक्षिप्त हैं।"

आशा है, अब आप को इन प्रमाणों से हमारी स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो गया होगा।

प्रभा—हा अच्छी तरह से। इस में कोई ऐतराज़ की बात नहीं। हम भी आगे को वेद प्रमाण को ही प्रधानता दिया करेंगी।

बहिनो! आप भी याद रक्खें कि वेद ही सर्वोपरि धर्म पुस्तक है। जब कोई तुम से पूछे कि तुम्हारा धर्म पुस्तक कौनसा है, तब तुम वेद को ही बतलाया करो। अच्छा, महाराज! अब मेरी तीसरी शंका भी मिटावें। हमें बताया जाता है कि आर्य लोग नास्तिक हैं। राम, कृष्ण को नहीं मानते। क्या यह सत्य है?

पण्डित—नहीं, सुनो! मनु भगवान् के कथनानुसार "नास्तिको वेद निन्दकः", जो ईश्वर और वेद को न माने वह नास्तिक है। हम वेद को तो मानते ही हैं यह तो आपने सुन लिया। ईश्वर को भी हम मानते है। क्या आपने आर्य समाज का प्रथम और द्वितीय नियम नहीं सुना? जिस में "सब सत्य विद्या और जितने पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है। और वह सच्चिदानन्द स्वरूप, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनुपम, निर्विकार, सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् सृष्टि कर्ता धर्ता हर्ता और कर्मफल प्रदाता" मानकर वही उपासना योग्य बतलाया है।

प्रमा—सुना है।

पण्डित—जब सुना है तब ऐसी अवस्था मे आप स्वय सोचे कि ईश्वर के मानने वाले होने से हम नास्तिक कैसे? हां हम राम कृष्ण आदि को ईश्वर नहीं मानते। क्योंकि उन मे पूर्वोक्त ईश्वर का कोई भी गुण नहीं घटता। हम उन्हे मर्यादा पुरुषोत्तम और योगेश्वर मानते हैं। और आप्त पुरुष सदाचारी और आदर्श मनुष्य मानते हैं। हम उनकी तरह जो हमे नास्तिक कहते हैं, राम कृष्ण आदि को स्वाग भर कर नहीं नचाते।

प्रत्युत उनके नचाने का विरोध करते हैं। अब आप विचारलें कि राम कृष्णादि को कौन मानता है और कौन नहीं मानता। बात बिल्कुल साफ और मोटी है।

प्रभा—आप का विचार बिल्कुल सत्य है। मैं सत्य कहती हूं कि आप ही सच्चे आस्तिक हैं। बहिनो! ध्यान से सुन लो आर्य लोग जैसा राम और कृष्ण को मानते हैं, सनातनी ऐसा नहीं मानते। वह उन्हें ईश्वर मान कर भी निन्दा करते हैं। अतः आर्य धर्म के विचारों को सत्य समझ कर अपनाओ। अच्छा महाराज! मेरी चौथी शंका भी मिटा दीजिएगा, कि आप मूर्तिपूजा को क्यों नहीं मानते जब कि वह ईश्वर प्राप्ति का एक मुख्य साधन है?

पण्डित—बहिन जी! सुनिये, ईश्वर निराकार है और सर्व व्यापक है। उसकी मूर्ति किसी भी अवस्था में नहीं बन सकती। सर्व व्यापक होने से उसे एक स्थान पर ताला लगा कर रखना भी शोभा नहीं देता। उसकी प्राप्ति का मुख्य साधन तो मन की एकाग्रता, यम नियमादि अष्टांग योग का अनुष्ठानादि वेद विहित मार्ग पर चलना ही है। कारीगर की बनाई मूर्ति को देख कर मन की एकाग्रता असम्भव है। क्यों कि मन उस प्रत्यक्ष मूर्ति के अवयवों की अच्छी बुरी बनावट में उलझा रहेगा। और मनुष्य उसी का भरोसा कर सब शुभ कर्मों से हाथ धो बैठेगा। आलसी भी बन जायगा। इसके अलावा उसे ताला मे बन्द समझकर पापों से भी न रुकेगा इत्यादि अनेक दोष मूर्ति पूजा से है। अतः हम लोग निराकार ईश्वर को सर्व व्यापक समझ कर पाप कर्मों के करने में सकोच

करते हैं। वास्तव में ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना और उस के गुण कर्म स्वभावानुसार अपने को बनाना ही पूजा है।

प्रभा—मैं बिल्कुल समझ गई कि ईश्वर की मूर्ति नहीं बन सकती। तो क्या आप के धर्म में किसी प्रकार की भी मूर्ति पूजा मान्य नहीं?

पण्डित—जड़ और चेतन दो प्रकार की मूर्तियां हैं। हम दोनों को ही मानते हैं।

प्रभा—किस प्रकार महाराज!

पण्डित—सुनिये! जूता, उस्तरा, छत्र, दण्ड, पुस्तक, मकान, वृक्ष, अग्नि जल, सूर्यादि जड़ मूर्तियां हैं। इन की पूजा यही है कि इन को हिफ़ाजत से रखना, इन से उचित लाभ उठाना और इन्हें सुखकारी बनाना। माता, पिता, आचार्य, गुरु, अतिथि और विद्वान् पुरुष यह चेतन मूर्तियां हैं। इन की पूजा यही है कि इन्हें अपनी सेवा से प्रसन्न रखना, आज्ञा मानना, इन के श्रेष्ठ आचार व गुणों को धारण करना आदि। इस प्रकार की पूजा को वेदादि सत्य शास्त्र सब मानते हैं, यही पूर्व काल में प्रचलित थी।

भा—आप का कथन बिल्कुल सत्य है। बहिनो! हमें ऐसी ही मूर्तिपूजा करनी चाहिए। जड़मूर्ति को ईश्वर समझ कर आगे को न तो फूल बताशे चढ़ाना, न परिक्रमा करना और न ही उससे पुत्र-धन आदि की प्रार्थना करनी। आर्य धर्म का मार्ग अति सरल और सुखदायी है यह विश्वास करो। मैं अब विराम लेती हूं। मेरी शंकाएँ प्रायः मिट चुकी हैं। इसके लिए

मैं महाराज पण्डित जी का धन्यवाद करती हूं।

पण्डित—धन्यवाद तो आप का ही मुझे करना चाहिए, क्योंकि आप ने मेरे धर्म के सत्य विचारों को स्वीकार किया है। अस्तु और किसी बहिन को कुछ पूछना हो तो पूछें। अभी समय आध घण्टा और बचा है।

माता—बहिनो! इस बहती गंगा में गोता लगालो। ऐसा शुभावसर पुनः शीघ्र प्राप्त न होगा। जन्म-सफल का यह समय है। बेटी शान्ता! अच्छा, अब तू शङ्काएं करले। चल खड़ी हो।

शान्ता—(आज्ञा पाकर) (मा० रामनाथ की दूसरी कन्या जोकि प्रभाकर पास है) खड़ी होकर बोली—कि भगवन्! जप किस का और किस प्रकार करना चाहिए ?

पण्डित—जप, ओ३म्—जो कि परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है—का ही करना चाहिए। क्योंकि 'ओं क्रतो स्मर०' यह वेद की आज्ञा है। अब उसकी रीति यह है कि जो २ गुण भगवान् के हैं उन २ गुणों को स्मरण करते हुए अपने में उन गुणों को धारण करना चाहिए। जैसे परमात्मा न्यायकारी है तो उस के न्याय गुण को धारण कर किसी से अन्याय न करना चाहिए। अन्यथा यह जप ऐसा ही होगा जैसा कि गुड २ के कथन मात्र से जिव्हा मीठी नहीं होती।

शान्ता—धन्य हो भगवन्! आप ने खूब अच्छी तरह समझाया, समझ मे आगया। अब आप बतलावें कि क्या गंगा स्नान या गंगा नामोच्चारण से पाप नष्ट हो जाते हैं या नहीं ?

पण्डित—बिल्कुल नहीं। जो स्नान और नाम स्मरण मात्र से पाप छूटता हो तो दुःखी कोई न रहना चाहिए। भला नाम लेने में

भी कोई बल लगता है। ऐसा मानने से पाप से भी कोई न डरेगा। वह समझेगा कि पाप करलो, गंगा में स्नान या नाम लेने से तो दूर हो ही जायगा। ऐसा विश्वासी व्यर्थ में पाप करके लोक-परलोक दोनों का नाश कर बैठता है। उसको यह पता नहीं कि मैं पाप करके ईश्वर की न्याय व्यवस्थानुसार फल पाये विना नहीं रह सकूंगा। अतः बहिनो! विश्वास रक्खो पाप कर्म से गंगा स्नान व नाम स्मरण से छुटकारा न होगा। फल अवश्य मिलेगा।

शान्ता—ठीक है. बिल्कुल ठीक है। यह व्यर्थ की पोप लीला ही है। अब कृपा करके तीर्थों के बारे में भी समझा दीजिए। वास्तविक तीर्थ कौन से हैं?

पण्डित—हमारे धर्म में गंगा-यमुना, सरस्वती, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, गया आदि को तीर्थ—तरने का साधन—नहीं माना गया। प्रत्युत वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय, धार्मिक विद्वानों का सत्संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य सेवन माता पितादि की सेवा ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना, धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञान विज्ञानादि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ कहलाते हैं। जल स्थल तीर्थ नहीं हो सकते।

।—आप ने जैसा बतलाया है, बिल्कुल सत्य है। सच्चे तीर्थ यही हो सकते हैं। बहिनो! यह सब बातें याद रखने योग्य हैं। गंगादि मे अपने धन को न बहाओ। और जो इस बहाने पाखण्ड हो रहा है उस के फैलाने में सहायक मत बनो। अच्छा, पण्डित जी! यह तो बताइये कि यह एकादशी अष्टमी आदि

के व्रत भी ठीक हैं या नहीं ?

पण्डित—बहिन जी ! व्रत का अर्थ है उपवास वह तब ही करना उचित है जब अजीर्ण हो। भूख न हो। या मन में कोई कुविचार आगया हो अथवा अन्य कोई रोग हो तो इसे उसकी चिकित्सा समझना चाहिए। उस दिन भी दूध या शर्बत अवश्य पान करे। इतना और स्मरण रखें कि गर्भवती, नव विवाहिता स्त्री, लडके व युवा पुरुषों को तो कभी भी उपवास व्रत नहीं करना चाहिए। सच्चे व्रत तो बहिनो ! अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, लालच त्याग, पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति, परोपकारादि हैं। जिन के करने से बडा कल्याण और सुधार होता है।

शान्ता—महाराज ! आपने बहुत अच्छा उपदेश दिया। सचमुच व्रत तो स्वास्थ्य के लिए हैं। परन्तु हमारी बहिनें व्रत करती २ निर्बल हो गई हैं। बहिनो ! उन मिथ्या व्रतों को छोडो। यह हैं व्रत जो कि महाराज बता रहे हैं। इन्हें अपना कर आत्म-सुधार करो। अच्छा महाराज मेरे मन में कई दिनों से यह शंका उठ रही है कि आर्यों की यह नमस्ते की रीति कुच्छ नई सी है। भला छोटा बड़े को नमस्कार कर ले तो करले, क्या बडा भी छोटे को नमस्ते कर सकता है ? और इसका प्रचार कब से हुआ। मेरे ख्याल में तो राम राम की रीति अच्छी है। क्योंकि मिलते समय प्रथम ईश्वर का नाम मुंह से निकलता है। कहिये कौन सी रीति ग्रहण करने योग्य है ?

पण्डित—देखो बहिन जी ! प्रश्न होता है कि राम २ तो श्रीरामचन्द्र जी के पैदा होने के बाद ही चली है न। तो उन के पैदा होने

से पूर्व उनके पिता, माता, गुरु वसिष्ठ, विश्वामित्र और ससुर जनक तथा प्राचीन ऋषि मुनि परस्पर मिलते समय कौन सा शब्द बोलते थे ? निस्सन्देह वह वेदोक्त ऋषिमुनियों से स्वीकृत यही उत्तम, सार्थक, प्रभावशाली शब्द नमस्ते का प्रयोग होता था। देखिये किसी भी प्राचीन वैदिक ग्रन्थ में राम राम, जय श्री कृष्ण, जय सीताराम अथवा जयहरि आदि शब्द नहीं मिलते। परन्तु यह उत्तम नमस्ते शब्द सर्वत्र ग्रन्थों में मिलता है जैसा कि वेदादि में—

१—नमस्तेऽग्न ओजसे। साम० पू० २। १

२—नमस्ते राजन् वरुणास्तु। अथर्व० १। १०। २

३—नमो ज्येष्ठयाय कनिष्ठाय च। य० अ० १६ मंत्र

इन में नमस्ते का प्रयोग है और छोटे बड़े के लिए विधान है।

४—नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु।

कठ०, अ० १ व० १ मं० ६

यमाचार्य ने नचिकेता को नमस्ते कही।

५—सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य।

बृहदारण्यक० ३। ८। ५

गार्गी ने याज्ञवल्क्य को नमस्ते की।

६—नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति।

बृहदारण्यक० ४। २। १

जनक ने याज्ञवल्क्य को नमस्ते की।

७—नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेचस्व चक्षुपा।

रामायण वा० सं० ५२। १७ श्लोक

विश्वामित्र ने वसिष्ठ महाराज को नमस्ते की।

८—शिवेन पाण्डवान् ध्याहि नमस्ते भरतर्षभ।

म० शल्य० ६३। ५१

भगवान् कृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र को नमस्ते की।

९—कुरु कार्याणि राजर्षे नमस्ते पुरुषर्षभ।

आश्रम वास प० १०। ५०

ब्राह्मणों ने राजा धृतराष्ट्र को नमस्ते की।

१०—प्रसीद राजन् क्षमयन्मयोक्तं

काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते।

म० कर्ण० ७०। ३६

अर्जुन ने बड़े भाई युधिष्ठिर को नमस्ते की।

११—नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्य पतिंवृणे।

म० आ० ८१। ३०

देवयानी ने अपने पिता शुक्राचार्य से नमस्ते करी।

१२—युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जान्हवीसुत।

म० अनु० १६७। १६

युधिष्ठिर ने दादा भीष्म को नमस्ते की।

१३—नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः

पुनश्चभूयोऽपि नमोनमस्ते। गीता ११। ३६

अर्जुन ने श्री कृष्ण जी को नमस्ते की।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वेदादि सत्य शास्त्रों मे नमस्ते का तो प्रमाण मिलता है। राम २ आदि का कहीं नहीं। अतः नमस्ते ही परस्पर मिलते समय करनी उचित

है। यही रीति प्राचीन एवं वैदिक है। नमस्ते का भाव यथा-योग्य सन्मान है। जब छोटा बडे का सन्मान करता है, तो बड़े को छोटे का अपमान करना चाहिए ? कदापि नहीं। वह बड़ा भी नमस्ते कह कर छोटे का मानों उचित सत्कार कर रहा है। अथवा भविष्य को उज्ज्वल बना रहा है। कहो वहिन ! अब समझ में आया या नहीं ?

शान्ता—हा जी ! आप की कृपा से समझ गई हूं। आप की रीति ही सही है। शेष सब कपोल कल्पना मात्र है। आप की दया से मेरी यह शंका भी मिट गई है। आप को धन्यवाद देती हूं। वहिनो ! हमारा धर्म है कि आज के सब विचारो को क्रिया में लावें। हमारे लिए यदि कोई धर्म सच्चा हो सकता है तो वैदिक धर्म ही हो सकता है। मेरी प्रार्थना है आप से कि आप सब इसी धर्म की अनुयायिनी बनें।

उपस्थित देवियां—स्वीकार है, स्वीकार है। हम सब आज से सत्य सनातन वैदिक धर्म को ही अपनाएंगी। और सदा आर्या स्त्री समाज की सदस्या बनकर सत्संग मे जाया करेंगी।

शान्ता—अच्छा पण्डित जी कृपा करके एक बात और बता दीजिए। कई लोग शंका करते हैं कि 'नमस्ते' में 'ते' शब्द अनादर सूचक है, जोकि किसी भी अवस्था में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ के लिए उचित नहीं हो सकता। कृपया इस पर कुछ स-प्रमाण बता कर अनुगृहीत कीजिएगा।

पण्डित—सुनो देवी जी ! ते-तव आदि शब्द प्रत्यक्ष के लिए आते हैं। जब सामने एक व्यक्ति छोटा हो-चाहे बड़ा हो-हो तब उसके लिए बहुवचनान्त शब्द का प्रयोग तो उचित है नहीं।

अतः 'ते' शब्द ही—जो योग्यतानुसार एवं प्रकरणानुसार आदरानादर भावान्वित है—प्रत्यक्ष व्यक्ति के लिए समुचित प्रतीत होता है। देखिये निम्नलिखित प्रमाणों में कहीं भी 'ते' अपमान-द्योतक नहीं है—

१—अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः।

रामा० अयो० स० ३४ श्लो० ४६

श्री राम जी ने दशरथ जी से कहा।

२—न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह।

रामा० अयो० स० २७ श्लो० १६

माता सीता जी ने श्रीराम जी से कहा।

३—श्रोतुमिच्छामि भद्रां ते विस्तरेण कथामिमाम्।

रामा० बाल० स० ३१ श्लो० २

श्री राम जी ने गुरु विश्वामित्र जी से कहा।

४—गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।

द्रोणपर्व अ० ९१ श्लो० ३४

अर्जुन ने गुरु द्रोण से कहा।

५—तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि चात्र राज्ञि सनातनम्।

आदिपर्व १०३—२५

भीष्म जी ने माता सत्यवती जी से कहा।

६—शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। गीता० २—७

अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से कहा।

कहो, इन प्रमाणों के होते हुए भी कोई यह कहने का अब साहस कर सकता है कि नमस्ते में 'ते' शब्द अनादरसूचक है?

शान्ता—नहीं भगवन् ! नहीं। आपकी युक्ति व प्रमाण अकाट्य हैं। इससे मुझे अतीव सन्तुष्टि हुई है। बस एक शंका और है, वह भी यदि आपकी आज्ञा हो तो रख दूं।

पण्डित—हां हां, बेशक रक्खो।

शान्ता—यह सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण क्या हैं? क्या इन्हीं ग्रहों के कारण ही संसार मे सुखी, दुखी, राजा, रंक आदि होते हैं। क्या सूर्य चन्द्र को राहु केतु के बन्धन से छुडाने के लिए दान पुण्य और कुरुक्षेत्र आदि में स्नान करना अनुचित है?

पण्डित—देवी जी! सुनो। इस विषय में मैं अपने महाराज आचार्य की सम्मति जो उन्होंने सत्यार्थप्रकाश ११ समु० पृ० २२१ पर लिखी है, सुनाता हूँ।

"(सिद्धान्तशिरोमणि ज्योतिषग्रन्थ के अनुसार) जब सूर्य और भूमि के मध्य मे चन्द्रमा आता है तब सूर्यग्रहण, और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्र ग्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाश रूप होने से उसके सन्मुख छाया किसी की नहीं। किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य व दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है, वैसे ही ग्रहण में समझो।"

पुनः इसी पृष्ठ पर राजा-रंक, सुखी दुखी आदि के विषय मे लिखते हैं—

"जो धनाढ्य, दरिद्र, राजा-रंक होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं। ग्रहो से नहीं। देखो बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़की का विवाह ग्रहों की विद्या के अनुसार करते हैं। पुनः उनमें विरोध व विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता

है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता ?' इसलिए कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग कारण नहीं।" इत्यादि।

लेख को लोग, बहिन जी! अन्धविश्वास और अज्ञानता के कारण नहीं देखते व सुनते। यदि दान पुण्य और कुरुक्षेत्र के तालाब में स्नान करने से ही सूर्य चन्द्र की राहु केतु से मुक्ति होती हो और अपना दुःख दूर होता हो तो ईसाई व मुसलमानों के आज के दिनों के दुःखों को कौन दूर करेगा ? क्योंकि वह तो आज के दिन कोई भी हिन्दुआनी कर्म नहीं करते। वास्तव में देवी जी! यह मिथ्या ढकोसला है। करोड़ों रुपयों का व्यर्थ ही अज्ञानता से नाश होता है और जीता जागता जहालत का ज्वलन्त प्रमाण है। काश! हिन्दुओं का यह धन किसी दस्तकारी के काम व वैदिक शिक्षा व धर्म के प्रचार में व्यय होता। परमात्मा हमारे भाइयों को सुबुद्धि प्रदान करे जिससे यह अपने हानि-लाभ का विचार कर सकें। अस्तु, देवी जी! आशा है आपकी शङ्का मिट गई होगी।

शान्ता—आपका धन्यवाद आपकी कृपा से सब शंकाएं मिट गई हैं।

माता—अब देर बहुत हो गई है। अब पण्डित जी महाराज को विश्राम देना चाहिए। जो चर्चा आज हुई है उसे आप सब ने सुन ही लिया है। अब हमारा कर्तव्य है कि इन बातों को सविचार अमल में लावें। मैं बहिनो! आज यह घोषणा करती हूँ कि आज से शिवालय की पूजा को त्याग कर आर्या पुत्री पाठशाला की सेवा करूँगी। अब तक मेरी बुद्धि पर पाषाण

पूजा का प्रभाव पड़ा रहा। मैं सुपथ से भटकती रही। अब ईश्वर-दया से वेद-प्रकाश मिला है। एतदर्थ मैं महाराज जी को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। आप सब भी आशा है सम्मान पूर्वक महाराज जी को धन्यवाद देंगी।

सब—महाराज जी को धन्यवाद है। हमारी सब शंकाएं मिट गईं अब हमें कोई नहीं बहका सकता। हम सब कल से आर्या स्त्री समाज की सदस्या बनेंगी। वैदिकधर्म की सत्य शिक्षाओं का हम पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अच्छा, महाराज! नमस्ते!! फिर भी कभी कृपा कीजिएगा।

पण्डित—आप को धन्यवाद। परमात्मा करे आप सब का मन व आत्मा शुद्ध निर्मल बना रहे। जिस सचाई को आपने ग्रहण किया है उसका अंकुर दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि को प्राप्त हो। परमात्मा आप का भला करे।

(आरती व शान्ति पाठ के बाद सभा समाप्त
सब का अपने २ घरों को प्रस्थान)

पांचवां प्रकरण समाप्त

छठा प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम का आंगन

समय—दोपहर बाद २½ बजे

(नित्य नियम से निवृत्त होकर प० धर्मज्ञ जी ने अपने घर की ओर जाते हुए सामने आश्रम के आगन में शामियाना तना हुआ देख कर आश्रमाध्यक्ष श्री विमलानन्द सन्यासी जी से पूछा—)

पण्डित—भगवन्नमस्ते। यह आज क्या कोई उत्सव है? शामियाना लगा है?

सन्यासी—नमस्ते! नमस्ते!! हा हा, आज दोपहर बाद लगभग २ बजे से उत्सव होगा। कल शाम को ढिण्ढोरा भी पिटवा दिया था। क्या आपने नहीं सुना? कहीं बाहिर गए हुए होंगे।

पण्डित—शाम को न। हा हा मैं खेत में गाय के लिए चारा लेने को गया हुआ था। अच्छा, तो महाराज! यह उत्सव किस लिए और किस की ओर से होगा?

सन्यासी—धर्म प्रचार के लिए और सनातन धर्म की ओर से होगा।

पण्डित—क्या उनके विद्वान्, पण्डित, उपदेशक आगए हैं? कौन २ से महानुभाव पधारे हैं।

सन्यासी—सब को तो मैं जानता नहीं। नाहि मैंने पूछा। हा, उन में सुना है एक पण्डित त्र्यम्बक शास्त्री पुराणाचार्य्य हैं। वह बड़े विद्वान् हैं। आपने दोपहर बाद अवश्य दर्शन देना। सुने

तो वह क्या कहते हैं। मेरी तो सच्ची बात है। अब उधर सनातनधर्म की ओर बिलकुल भी रुचि नहीं है। उन्हों ने स्थान मांगा था। स्थान मैंने दे दिया है और इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

पण्डित—कोई बात नहीं। मैं आऊंगा। यदि कोई बात उन्होंने—प्रचारकों ने—वैदिकधर्म के सम्बन्ध में भ्रान्ति फैलाने वाली कही तो मैं भ्रान्ति-निवारण का यत्न करूंगा।

संन्यासी—तो इस से झगड़ा तो न बढ़ जायगा!

पण्डित—नहीं, नहीं। झगड़ा किस बात का। झगड़ा क्यों होगा। शान्ति से सब काम होगा आप निश्चिन्त रहें। अच्छा नमस्ते मैं फिर दोपहर बाद आऊंगा।

पण्डित जी अपने घर को चले गए। पुन दोपहर को पधारे।
उत्सव मण्डप में यथोचित स्थान पर बैठ कर
उत्सव प्रबन्धकर्ता रूपचन्द जी से बोले-

पण्डित—कहिये भगवन्! आज का प्रोग्राम क्या है?

प्रबन्धकर्ता—बस जी। अब पहिले आध-घण्टा भजन-कीर्तन होगा। तदनन्तर पुराणाचार्य पं० त्र्यम्बक जी का व्याख्यान होगा।

पण्डित—अच्छा अच्छा। बहुत ठीक।

(भजन हुए, तदनन्तर पुराणाचार्य जी का व्याख्यान आरम्भ हुआ—)

पुराणाचार्य—(त्वमेव माता च पिता त्वमेव) श्लोक बोल कर बहिनो! और भाईयो! आप लोग प्रथम जयकारा लगावें। बोलो सियापति रामचन्द्र की जय। बोलो कृष्ण बलदेव की जय। बोलो श्री सनातन धर्म की जय। सज्जनो! मैं आज आप के सामने वर्णव्यवस्था पर कुच्छ विचार उपस्थित

करूंगा। सनातन धर्म में वर्णव्यवस्था जन्म से मानी जाती है। जिस का जिस घर मे जन्म हुआ हो वह उसी जाति का कहलाता है। मुख्यरूप से चार जातिया—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र—हैं। फिर भल्ला, पुरी, सारस्वत, गौड़ अग्रवाल, महाजन आदि अनेक उप जातिया भी मानी जाती हैं। इन सबका वर्णन वेदों मे शास्त्रो मे बडे विस्तार से मिलता है। आप सत्य समझें जैसे गेहूं के बीज से गेहूं और चणे के बीज से चणे पैदा होते हैं इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मणी के रज वीर्य से ब्राह्मण ही पैदा होगा। आर्य समाज की यह बकवास ही जाननी चाहिए जो यह दुनिया मे कहता फिरता है कि वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार है। और ब्राह्मण, शूद्र और शूद्र ब्राह्मण बन सकता है। भाई! यह बात तो ऐसी है जैसे गधे को गाय और गाय को गधा बनाना। यह बात बिलकुल असम्भव है, कि ब्राह्मण शूद्र बन जावे, और शूद्र ब्राह्मण बन जावे। वेद, शास्त्र, और इतिहास के भी सर्वथा विरुद्ध है। इस पर जो कोई शास्त्रार्थ करना चाहे कर सकता है। खुला चैलज है। जिस का जी चाहे मैदान में आवे (इत्यादि बातें कह कर बैठने ही लगे थे कि श्रोताओं में उपस्थित आर्य भाइयों की ओर से आवाज आई स्वीकार है स्वीकार है। आप का चैलज स्वीकार है।)

इस पर दोनों पक्षों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने शास्त्रार्थ की बजाय शका समाधान को ही उचित समझा। इसी निश्चयानुसार घोषणा कर दी गई कि अब २ घण्टे के लिए उक्त विषय पर शका समाधान होगा। शंका पुराणाचार्य जी करेंगे। और समाधान आर्य विद्वान् प० चमझ जी करेंगे। प्रमाण

दोनों पक्षों को प्रामाणिक ग्रन्थों में से दिए जाएंगे।

पुराणाचार्य—आप लोग ब्राह्मण क्षत्रियादि को जातियां नहीं मानते कृपा करके जाति का लक्षण बता दें। जिससे आप के विचारों का सब को ज्ञान हो जावे।

आर्य विद्वान्—सुनिये ! जाति का लक्षण सिद्धान्त कौमुदी जो एक व्याकरण की प्रसिद्ध पुस्तक है, उस में तो 'आकृतिग्रहणा जातिः' अर्थात् जो सूरत और शकल मे विशेषता के कारण दूसरी जातियों से अलग भिन्न पहचानी जावे, उसे जाति कहते हैं-लिखा है। जैसे हाथी घोड़ा, बकरी गौ, भैंस, गधा, आदि स्वरूपतः पशु जाति में भिन्न २ जातियां हैं। सब की आकृति भिन्न २ है। अतः पहचानने मे कोई कठिनाई नहीं होती। यदि इसी प्रकार मनुष्य जाति में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य शूद्र आदि को भिन्न २ जातियां माना जावे, तो इनकी आकृति मे भी हाथी घोडे की भांति भेद होना चाहिए था। परन्तु भेद का न होना ही इस बात को सिद्ध करता है कि उक्त ब्राह्मणादि, हाथी आदि की भांति भिन्न २ जातियां नहीं हैं। और बताईये कि जिस प्रकार एक स्थान पर खड़े हुए २ हाथी घोड़े गधे, गाय भैंस बकरी आदि की आकृति भिन्न २ होने से एक नासमझ भी आसानी से पहिचान लेता है कि यह अमुक है और यह अमुक। आप निष्पक्ष होकर बतलावें कि इसी प्रकार एक स्थान पर बैठे हुए जन समुदाय में से कोई आप सरीखा समझदार व्यक्ति भी पहिचान सकता है कि अमुक ब्राह्मण है और अमुक शूद्र है ? सत्य कहिये। पहिचान सकता है ? कदापि नहीं त्रिकाल में भी नहीं।

फिर ब्राह्मणादि को भिन्न २ जातिया कैसे माना जा सकता है। अस्तु अब जाति का दूसरा लक्षण जो न्यायशास्त्र में किया है। सुनिये लिखा है 'समान प्रसवात्मिका जातिः' २।२।७१

अर्थात् जो नर और मादा परस्पर मिलकर अपने समान सन्तान को पैदा कर सके और उनका सिलसिला नसल भी आगे चल सके, वह नर और मादा एक जाति के माने जाएंगे। जैसे घोड़ा-घोडी, गधा-गधी यह परस्पर समागम कर अपने तुल्य सन्तान को पैदा करते हैं। क्योंकि यह नर और मादा एक हो जाति के हैं। इसी प्रकार जैसे ब्राह्मण ब्राह्मणी से समागम कर सन्तान पैदा करता है उसी प्रकार क्षत्रिया से वैश्या और शूद्रा से भी अपने तुल्य सन्तान पैदा कर सकता है। इसी प्रकार जैसे क्षत्रिय क्षत्रिया से वैसे ही वह वैश्या, शूद्रा और ब्राह्मणी से भी कर सकता है। वैश्य भी वैश्या के अतिरिक्त शूद्रा, क्षत्रिया और ब्राह्मणी से और शूद्र भी शूद्रा की भांति क्षत्रिया, वैश्या, ब्राह्मणी से समागम कर अपने तुल्य सन्तान पैदा कर सकता है। उनका सिलसिला नसल में भी कोई बाधा नहीं पडती। क्योंकि यह सब मनुष्य जाति के नर और मादा आकृति तुल्य होने से एक जाति के ही हैं। अब जब कि गाय-घोडे के मेल से जो कि भिन्न २ जाति के नर-मादा हैं सन्तानोत्पत्ति असम्भव है। क्या इसी प्रकार आपके कथनानुसार यदि ब्राह्मण-शूद्रा को भिन्न २ जाति के नर-मादा मान लिया जावे, तो उक्त सिलसिला बन्द हो जाना चाहिये था। परन्तु नहीं होता। इसी से सिद्ध है कि यह

समान जाति मनुष्य जाति है। भिन्न २ जातियां नहीं। तीसरा लक्षण विद्वानो ने यह किया है कि 'जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बराबर अमिट—अपरिवर्तन शील बनी रहे—वह जाति है। जैसे गधे मे गधापन, गाय मे गौपन और मनुष्य में मनुष्यपन आदि। कोई भी वैज्ञानिक गधे मे से गधेपन को उसके जीवन-काल मे नहीं निकाल सकता या बदल सकता। अत: यह उसकी जाति है। यदि इसी प्रकार आप के कथनानुसार ब्राह्मण क्षत्रियादि को जातिया मान लिया जाय तो ब्राह्मण का मुसलमान या ईसाई आदि होना या शूद्र बनना असम्भव हो जावे। परन्तु असम्भव नहीं होता प्रत्युत मनु भगवान् के कथनानुसार—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥ १० । ६५

अर्थात्—शूद्र कुलोत्पन्न भी ब्राह्मणादि के समान गुण कर्म स्वभाव वाला होने से ब्राह्मणादि वर्णो मे गिना जाता है। और विप्र कुलोत्पन्न भी शूद्रादि के समान गुण कर्म स्वभाव वाला होने से शूद्र के सदृश गिना जाता है। क्षत्रिय और वैश्य के सम्बन्ध मे भी यही व्यवस्था है। इसमें वसिष्ठ विश्वामित्र, व्यास, सत्यकामजाबाल, मातंग आदि अनेक इतिहास एवं पुराण प्रसिद्ध प्रमाण हैं। अत: मैं समझता हू कि इन जाति लक्षणों में से कोई भी लक्षण ब्राह्मणादि के जाति होने मे नहीं घटता। यह बात आप लोगो ने भली भांति समझली होगी। यह चार वर्ण हैं जिनका गुण कर्म स्वभावानुसार ही (जन्म से नहीं) निश्चय व निर्णय होता है। यह है आर्य समाज की उक्त

विषय में स्थिति। अब आप और कहें।

पुराणाचार्य—जो कुछ आपने कथन किया है, वह सत्य ही है। इस में सन्देह नहीं। परन्तु रज-वीर्य की प्रधानता का खण्डन कैसे कर सकते हैं? जैसे चणे से चणे ही पैदा होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण-ब्राह्मणी के रज-वीर्य से ब्राह्मण ही पैदा होगा। वह किस प्रकार शूद्रादि बन सकता है?

आर्य विद्वान्—देखिये महाराज! रज-वीर्य की प्रधानता तो केवल इतनी ही है कि जिस जाति के नर-मादा का रज-वीर्य हो, उस से तत्सदृश ही सन्तान उत्पन्न हो। जैसे गो जाति के नर-मादा के रज-वीर्य से तत्सदृश गौ बैल ही पैदा होना चाहिए, अन्य सिंह, बिल्ला, कुत्ता आदि नहीं। इसी प्रकार मनुष्य जाति के नर-मादा के रज-वीर्य से तत्सदृश मनुष्य शरीर का पैदा होना ही आवश्यक है। अन्य कुछ होना असम्भव तथा सृष्टि नियम के विरुद्ध सिद्ध होगा। अतः ब्राह्मण-ब्राह्मणी कोई जाति नहीं। यह वर्ण हैं। इन में परिवर्तन संभव है।

"जो कोई रज वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था मानें, और गुण कर्मों के योग से न माने; तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ कर नीच अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसल्मान हो गया हो तो उस को ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उस ने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिए इस लिए वह ब्राह्मण नहीं है। इस से यही सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम-वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे

तो इसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।"

स० प्र० ४ समु० पृ० ५५. २० वीं बार।

इसके अतिरिक्त यदि आप रज-वीर्य को वर्ण व्यवस्था में प्रधानता देंगे तो निम्न लिखित (आपके मान्य ग्रन्थों के अनुसार) समस्याओं का सुलझाव कैसे होगा?

जैसा कि मनु० अ० ७ श्लोक ४२ में आता है:—

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः॥

श्लोक के चतुर्थ पाद पर भाष्यकार कुल्लूकभट्ट की टीका विशेषतया देखने योग्य है। आप लिखते हैं:—

'गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्।

इस से अधिक खण्डन आप के सिद्धान्त का और क्या हो सकता है? जब कि विश्वामित्र इसी जन्म में क्षत्रिय होते हुए ब्राह्मण बन सकता है? और भी मनु० अ० १० श्लोक ४२ देखिये:—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥

यहां ब्राह्मण का केवल तीन दिन में ही दूध बेचने मात्र से शूद्र होना लिखा है।

इसी प्रकार (शिव० उमा सं० अ० ३६ श्लोक ४८। ४९ में) नाभाग का जो दिष्ट के पुत्र थे, ब्राह्मणत्व को पाना लिखा है। और धार्ष्ट जो पहिले क्षत्रिय थे फिर पृथिवी पर वह ब्राह्मण बन

गए-लिखा है। फिर भविष्य ब्राह्मपर्व अ० ४२ श्लो० २६-३८ तक के निम्न लिखित श्लोको का क्या समाधान करोगे?

हरिणीगर्भसंभूत ऋष्यशृंगो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥
श्वपाकीगर्भसंभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।
उलूकीगर्भसंभूतः कणादाख्यो महामुनिः॥
गणिकागर्भसंभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः।
नाविकागर्भसंभूतो मन्दपालो महामुनिः॥
तपसा ब्राह्मणा जाताः संस्कारस्तेन कारणम्॥

यह सारे के सारे, ऋषिशृंग, पराशर, कणाद, वसिष्ठ, मन्दपाल आदि देखिये नीच कुलों मे पैदा हुए, परन्तु तप से संस्कार से उन्नति को पा गए। यदि रज-वीर्य को प्रधान मानोगे तो यह क्यो कर हो सकेगा? इतना ही नहीं, महाभारत आदि अ० १०५ के अनुसार व्यास जी की माता ब्राह्मणी न थी, किन्तु वह ब्राह्मण कहलाये। (अ० १३० के अनुसार) कृपाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी किन्तु वह ब्राह्मण कहलाए। (अ० १३१ के अनुसार) द्रोणाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी, वह भी ब्राह्मण कहलाए। (अनुशासन पर्व० अ० ४ के अनुसार) विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी, किन्तु वह इसी जन्म में ब्राह्मण बने। कहा तक बताऊँ इत्यादि अनेक प्रमाण आप की पुस्तकों ही से दिखाये जा सकते हैं, जिन से आप की यह धारणा रज-वीर्य ही वर्ण व्यवस्था में प्रधान है—नितान्त निःसार सिद्ध होती

है। (आर्य विद्वान् के इन प्रमाणों व युक्तियों को सुनकर सारी जनता के मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की लहर दौड़ती हुई नजर आती थी, मगर उधर··· ··बस पूछो ही न) ।

अब आप और क्या कहना चाहते हैं ?

प्रबन्धकर्ता—(एक मिनट के लिए) सज्जनो ! सुनियेगा, शंका समाधान के लिए २ घण्टा नियत किए थे १॥ घण्टा समाप्त हो चुका है। अब मैं अपने पुराणाचार्य जी से प्रार्थना करता हूँ कि वह अपनी अन्तिम शंका उक्त विषय में रक्खें और आर्य विद्वान् जी से प्रार्थना है कि वह संक्षिप्त शब्दों द्वारा समाधान करें।

पुराणाचार्य—आपने जो प्रमाण व युक्तियां रज-वीर्य वर्णव्यवस्था में प्रधान नहीं—के सम्बन्ध में दी हैं यद्यपि मेरे पास अब उनका कोई उत्तर नहीं, तो भी मैं कहता हूँ कि जैसे वन्ध्या गौ, जाति की गौ ही कहलाती है वैसे कर्म ज्ञान हीन ब्राह्मण भी जन्म का ब्राह्मण कहलाए इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

आर्य विद्वान्—प्रथम तो आपका दृष्टान्त ही असंगत है। क्योंकि गौ जाति की भांति ब्राह्मण जाति नहीं, अपितु वर्ण है। जाति तो उसकी गौ की तरह मनुष्य है। जैसे वन्ध्या गौ प्रसूता न होने के कारण गोत्व युक्त होने से गौ ही कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों से हीन होने पर मनुष्यत्व युक्त होने से मनुष्य तो कहलायेगा परन्तु वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता। जैसे वन्ध्या गौ दुधारु नहीं कहला सकती।

पुराणाचार्य—अच्छा, आप अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कोई

वेद प्रमाण दीजिए, जिस से यह सिद्ध हो कि ब्राह्मणादि चार वर्ण गुणकर्मानुसार हैं। जन्म से नहीं ?

आर्य विद्वान—मंत्र तो वही है जिसे आप अर्थ के ठीक न समझने से जन्म की वर्ण की व्यवस्था मे विनियुक्त करते हैं। मन्त्र यह है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

य० ३१।११

भावार्थ—(ऋषि भाष्य) जो इस पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि मे मुख के सदृश सब मे मुख्य उत्तम हो वह ब्राह्मण। "बाहुर्वै बलं" बाहुबल मे जो अधिक हो वह क्षत्रिय। जो सब पदार्थों व देशों मे ऊरु के बल जावे आवे व प्रवेश करे वह वैश्य। और जो पग के अर्थात् नीचेके अंगके सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है।

जब तक इस वेदाज्ञानुसार गुण कर्म स्वभाव से वर्णों की व्यवस्था होती रही तब तक समस्त राष्ट्र व जाति उन्नति के शिखर पर रही, और यह देश समस्त देशों मे पूजा-पात्र व गुरु कहलाता था। सब लोग परस्पर जैसे शरीर के सब अग एक दूसरे के सहायक होते हैं—सहायक थे। ऊँच नीच का भाव नाम को भी न था। शूद्र को यह विश्वास था कि यदि मैंने विद्या-बुद्धि और सदाचार के क्षेत्र मे उन्नति की तो मुझे अवश्य धर्मार्य सभा व न्यायार्य सभा की ओर से उत्तम मान की पदवी—ब्राह्मण—मिलेगी। इस लोभ से यह श्रेणी खूब उन्नति कर रही थी। उधर ब्राह्मण को यह भय था कि यदि

मैंने प्रमाद वश वेद-विद्या को ग्रहण न किया और न सदाचार-सम्पन्न बना, तो यह उत्तम पदवी—ब्राह्मण—मुझ से छिन जायगी। इस अधः पतन के भय से यह श्रेणी भी अत्युन्नति पर थी। इस प्रकार की व्यवस्था का फल यह था कि यह समस्त आर्यावर्त देश एक प्रकार से विद्या का भंडार बना हुआ था। मूर्खता निरक्षरता का नितान्त अभाव था। अश्वपति आदि आर्य राजा साहस पूर्वक कह सकते थे—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥
(छान्दोग्य)

सचमुच वैदिकवर्ण व्यवस्था ही समाजवाद का मूलाधार है। व्यक्ति सुधार के बिना समाज-सुधार कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। वैदिक वर्णव्यवस्था के अनुसार सुधरे हुए व्यक्ति देखिये किस प्रकार से परस्पर प्रीति व कान्तियुक्त होने की कामना करते हैं—

१—प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ अ० १९।६२।१

२—रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ य० १८।४८

भावार्थ स्पष्ट। पूर्व मंत्र मे चारों वर्णों मे परस्पर प्रीति की कामना की गई है। दूसरे मे सब के कान्ति-शोभा-युक्त होने की प्रार्थना की गई है। काश! यह वैदिक धर्म की अनूठी देन पुनः समस्त संसार मे प्रचारित व प्रसारित हो। जिससे समस्त

मानव-समाज पारस्परिक घृणा, ऊंच नीच, छूत छात की विष-वेल से पल्ला छुडा कर पारस्परिक—वेदरीत्या—प्रेम के सूत्र में ग्रथित होकर समाज को समुन्नत करें। इति।

(इस कथन के बाद आर्य विद्वान् प॰ धर्मज्ञ जी के बैठते ही चारों ओर से सहर्ष करतलध्वनि और वैदिक धर्म की जय, ऋषि दयानन्द की जय के आकाश भेदी नारे लगने लगे। प्रबन्धकर्ता ने आज के कार्य क्रम को समाप्त करते हुए कहा —)

प्रबन्धकर्ता—सज्जनो! मैं आप सब का धन्यवाद करता हू। आप ने बडी शान्ति के साथ सारे कार्यक्रम को देखा है और सुना है। दोनो विद्वानो का भी धन्यवाद करता हू जिन्होने शका समाधान मे सभ्य तथा मधुरभाषा का प्रयोग किया है। आज की चर्चा का आप पर कोई प्रभाव पडा हो या न पडा हो, मैं तो सत्य कहता हूं कि मुझ पर आशातीत प्रभाव पडा है। अब तक मैं सनातन धर्म के वर्णव्यवस्था के सिद्धान्त को सत्य माने बैठा था। परन्तु आज आर्य विद्वान् के मुह से इस विषय मे प्रमाण व युक्तिया सुन कर मेरी आत्मा वैदिक धर्म के सिद्धान्त को ही सत्यरूप से स्वीकार करती है। (ताली) अत. आज से मैं वैदिक धर्म को सत्य सनातनधर्म मान कर और इसके सत्य सिद्धान्तो के आगे सिर झुकाता हुआ आर्य समाज जो इस धर्म का प्रचार कर रहा है उसका तुच्छ सदस्य बनने की प्रतिज्ञा करता हू। इति (जनता, बोलो वैदिक धर्म की जय)

पुराणाचार्य—(२ मिन्ट मुझे दीजिए) प्यारे भाईयो! मैं परमात्मा को साक्षी कर कहता हू कि मेरे पास आर्य विद्वान् के दिए

हुए प्रमाणों व युक्तियों का कोई उत्तर नहीं और नहीं किसी के पास हो सकता है। अब तक मैं हठ धर्मी के कारण सत्य को असत्य सिद्ध करता रहा। परन्तु सांच को आंच नहीं। आखिर सत्य सत्य ही होता है। मेरे आत्मा पर आज के समाधानों का अतीव प्रभाव पड़ा है। अतः मैं किसी की प्रेरणा व लोभवश नहीं अपितु अन्तरात्मा की सुप्रेरणा से अपने आप को वैदिकधर्म के तुच्छ सेवक के रूप में समर्पित करता हूं। पूज्य पण्डित जी मुझे जैसी आज्ञा करेंगे, करने को तैय्यार हूं। इति

आर्य विद्वान्—मैं आप सब को धन्यवाद करता हूं। और विशेष कर प्रबन्धकर्ता जी और पुराणाचार्य जी का जिन्होंने वैदिक धर्म के सत्य सिद्धान्तों को सुन कर उक्त धर्म को अपनाना स्वीकार किया है। परमात्मा करे कि इस प्रकार यह सत्य की ज्योति सब के हृदयों में प्रकाशित होती रहे। और दुराग्रह को त्याग कर सब सत्याग्रही बनें। इति।

(उत्सव समाप्त। सब ओर से हर्ष प्रकाश जलूस की शकल। पुराणाचार्य आर्य विद्वान् और प्रबन्ध कर्ता का आर्य समाज में प्रवेश। मिष्टान्न के बाद स्व २ स्थान को प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—पण्डित जी का मकान।

समय—प्रात ८ बजे।

(पं० धर्मेश जी देवाश्रम से सन्ध्यादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो कर घर में आकर दुग्धपान कर ही रहे थे कि पुराणाचार्य जी घर के मुख्य द्वार का किवाड़ खट खटा कर बोले —)

पुराणाचार्य—पण्डित जी महाराज!

एक कन्या—कौन हैं जी (पं० जी की पुत्री कान्ता बोली)

पुराणाचार्य—मैं हूं जी! पण्डित जी का एक शिष्य। क्या पण्डित जी घर पर ही हैं?

कन्या—हां जी! यहीं हैं। क्या काम है?

पुराणाचार्य—काम तो अत्यावश्यक है, बेटी! जाओ तुम अपने पिता जी से बोलो कि कल जो आप का शिष्य बना है वह द्वार पर खड़ा है।

कन्या—अच्छा जी, कह कर चली। पिता जी को बुलाकर ले आई।

पण्डित—(पुराणाचार्य जी को देखकर) वाह! वाह! बड़ी कृपा की है। आइये न बैठिये, कुछ दुग्धपान कीजिए। कहिए, कुशल तो है?

पुराणाचार्य—आप की सब दया है। अभी दूध आदि पी कर ही आया हूं। आप का धन्यवाद है।

पण्डित—तो अच्छा! कहिये क्या आज्ञा है?

पुराणाचार्य—आज्ञा नहीं भगवन्! प्रार्थना करता हूं कि क्या आप कुछ समय दान कर सकते हैं?

पण्डित—क्यों नहीं, अवश्य रे, अच्छा काहे के लिए ?

पुराणाचार्य—ए जी, एं ए... ..

पण्डित—भाई संकोच न करो । स्पष्ट कहो न क्या कुछ शंकाएं हैं ?

पुराणाचार्य—(प्रसन्न वदन से) जी हाँ, हैं तो शंकाएं ही ।

पण्डित—फिर रक्खो न भाई । जल्दी करो । हा ! मेरा तो काम ही यही है ।

पुराणाचार्य—बड़ी कृपा है जी, अच्छा जी कृपया बतलावें कि अष्टादश पुराण क्या ईश्वर कृत हैं ? यदि नहीं तो अथर्व ११।७।२४ में चारों वेदों के साथ पुराण का स्पष्ट वर्णन क्यों है ?

पण्डित—वेदों में कोई ऐसा प्रमाण नहीं, जिस से सिद्ध हो कि अष्टादश पुराण ईश्वर-दत्त हैं । जिस मन्त्र से आप को भ्रान्ति हुई है, उस में भी पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त आदि १८ पुराणों का वर्णन नहीं । अपितु वेदों के नामों के मध्य में होने से देहली-दीप-न्याय से अर्थात् जैसे दीपक देहलीज़ पर धरा हुआ अन्दर बाहिर प्रकाश करता है, तद्वत् यह चारों वेदों का विशेषण हो जाता है । पुराण शब्द का अर्थ भी (निरुक्तानुसार) पुराना होता हुआ भी जो सदा नया बना रहे है । अतः वेद सदा से होने से पुराना, और प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर इस का उपदेश करते हैं अतः नया है । इस लिए भाई ! अथर्व के मन्त्र में वेदों का ही यह पुराण-शब्द विशेषण है । ब्रह्मवैवर्तादि का बोधक नहीं, समझे ।

पुराणाचार्य—जी हां समझ गया हूं । तो क्या यह (अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः) के अनुसार व्यासकृत हैं ?

पण्डित—नहीं ?

पुराणाचार्य—नहीं कैसे भगवन् ! ज़रा हेतु देकर समझाने की कृपा कीजिएगा।

पण्डित—लो भाई सुनो, देखो व्यास जी का समय आज से लगभग साढे पांच हज़ार साल पूर्व का है। यदि पुराण उनकी बनाई पुस्तकें मानी जाएं, तो उन मे उनके जीवन-काल के बाद की घटनाओं का वर्णन भला कैसे आ सकता है ? यह बाद की घटनाओं का वर्णन ही सिद्ध करता है कि पुराण व्यास कृत नहीं।

पुराणाचार्य—कैसी घटनाएं !

पण्डित—देखो भविष्य पुराण प्रतिसर्गपर्व ३ खं० १ अ० ४ मे हज़रत नूह का। अध्याय ५ मे हज़रत मूसा का। खं० ३ अ० २ मे हज़रत मसीह का। पर्व० ३ खं० ३ अ० ३ मे हज़रत मुहम्मद साहिब का। पर्व ३ खं० ४ अ० २२ मे अंग्रेज़ो का। पर्व २ खं० २ अ० ३३ मे विक्रमादित्य का। पर्व० ३ खं० १ अ० ५ में रविवार को सण्डे, फाल्गुन को फर्वरी कहे जाने का। इसी पुराण में पृथ्वीराज, चन्द्रगुप्त, सैल्यूकस गुरु नानक आदि २ हाल की घटनाओं का वर्णन है।

स्कन्द पुराण में, जगन्नाथ पुरी के मन्दिर का माहात्म्य है जो १२३१ विक्रमी मे उड़ीसा के राजा अनग भीमदेव ने बनवाया था।

ब्रह्मवैवर्त्त मे यवनो का वर्णन है। भागवत में भी इसी प्रकार है। लिंग पुराण में वैष्णव मताचार्य रामानुज का वर्णन है, जो कि विक्रम की ११वीं शताब्दी मे हुआ। इत्यादि घटनाओ

से सिद्ध होता है कि पुराण हाल के ज़माना मे बने हैं। व्यास के बनाए हुए नहीं हैं।

इस के अतिरिक्त चरित्र हीन कथाओं का मिलना, परस्पर विरोध का मिलना, सब राम कृष्ण व्यास ब्रह्मादि पूर्वज विद्वानों पर अनेक प्रकार के दोषों का लगा हुआ होना, वेद विरुद्ध सिद्धान्तों का होना और असम्भव तथा सृष्टि नियम विरुद्ध बातों का होना भी यही सिद्ध करता है कि ब्रह्मवैवर्त्त आदि १८ पुराण व्यास कृत नहीं हैं।

पुराणाचार्य—अब मुझे यह भली भांति ज्ञात हो गया है कि पुराण न तो ईश्वर कृत हैं और न ही व्यास कृत। यह कपोल कल्पित ग्रन्थ, धर्मग्रन्थ कदापि नहीं हो सकते।

पण्डित—अच्छा भाई और कोई शंका है? तो कहो?

पुराणाचार्य—भगवन्! क्या विधवा विवाह भी वेदादि सत्य शास्त्रों के अनुसार है।

पण्डित—हां, देखो वेदों मे स्पष्ट वर्णन है—

१—या पूर्वं पतिं वित्त्वा अथान्यं विन्दते परम्।
पंचौदनं च तावजं ददातो न वियोषितः॥
अ० ९। ५। २७

२—समानलोको भवति पुनर्भुवा परः पतिः।
योऽजं पंचौदनं दक्षिणां ज्योतिषं ददाति॥
अ० ९। ५। २८

भावार्थ—जो स्त्री पूर्व पति को प्राप्त करके उसके मरने पर अन्य पति को प्राप्त होती है वह दोनों अपरिमित यज्ञ को धारण करते हैं। १।

दूसरी वार विवाह करने वाली स्त्री और उसका पति दोनों पहले विवाह में मरने वालो के समान लोक वाले होते हैं। उन से इन में भेद नहीं होता। २।

अब मनु धर्म शास्त्र को लो। उस मे लिखा है:—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागताऽपिवा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ ९। १७६

भावार्थ—जिस स्त्री व पुरुष का पाणि ग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो सयोग न हुआ हो, ऐसी अक्षतयोनि स्त्री व अक्षतवीर्य पुरुष का अन्य स्त्री व पुरुष के साथ पुनर्विवाह हो सकता है।

इसी प्रकार वसिष्ठ स्मृति अ० १७ में लिखा है:—

पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता।
साचेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥

अर्थ स्पष्ट है।

याज्ञवल्क्य मे भी आता है—

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः सस्कृता पुनः।

इसी प्रकार अग्निपुराण अ० १५४ श्लोक ६। ७ देखिये—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥
मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया।

अर्थात् उक्त अवस्थाओ तथा इस जैसी और अवस्थाओ मे भी मृतपत्नीक पुरुष के लिए अन्य पत्नी का और मृतपतिक स्त्री के लिए अन्य पति का अधिकार स्पष्ट है।

ऐतिहासिक ग्रन्थ महाभारत मे (भीष्म पर्व अ० ६ श्लोक ७ ८ के अनुसार) उलोपी के पति के मरने पर उसके पिता ऐरावत ने वह अपनी सन्तानहीन कन्या अर्जुन से व्याह दी। उस से इरावान् नाम का पुत्र भी पैदा हुआ इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जिन से विधवा विवाह का समर्थन होता है।

पुराणाचार्य—आप की बात है तो ठीक। परन्तु सतयुग, त्रेता, द्वापर मे ही इस नियम पर आचरण होना सिद्ध होता है। 'देवराद्वा सुतोत्पत्ति कलौ पंच विवर्जयेत्'—के अनुसार कलियुग मे इस पर कैसे अमल हो सकता है।

पण्डित—आप ने जो वचन कलियुग मे विधवा-विवाह निषेध में सुनाया है यह प्रामाणिक शास्त्र का वचन नहीं है। इसलिए अनुपादेय है। जब आप मानते हैं कि सतयुगादि मे उक्त नियम का पालन था, तो भाई! अब पालन करने मे क्या आपत्ति है? दूसरी बात अर्जुन जिसने नागराज की विधवा कन्या से विवाह किया था वह कलियुग मे ही हुआ था।

देखो, राजतरंगिणी मे यह श्लोक मिलता है—

शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले,
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन्कुरुपाण्डवाः।

अर्थात्—कलियुग के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर अर्जुनादि हुए। समझ गए।

पुराणाचार्य—हां बिल्कुल समझ गया।

पण्डित—इस मे आदर्श की बात तो यह है भाई! कि यह पुनर्विवाह द्विजो में न हो तो अच्छा है। क्योकि इसमे (पुनर्विवाह में) स्त्री पुरुष मे प्रेम का न्यून होना, पतिव्रत व

स्त्री व्रत धर्म का नष्ट होना आदि अनेक दोष हैं। अतः द्विजों मे नियोग का होना ही वेदादि सत्य शास्त्र सम्मत है। पुनर्विवाह नहीं।

पुराणाचार्य—आप ने श्रीमान् जी! जो २ प्रमाण विधवा विवाह के समर्थन में दिए हैं, वह बिल्कुल ठीक हैं। वर्तमान समय मे जब कि पौराणिक विचार के भाईयो की कृपा से सहस्रों नहीं २ करोडो की संख्या मे १ वर्ष से लेकर ३५ वर्ष की आयु तक की विधवाए विद्यमान हो, अनेक प्रकार के कुकर्मों मे प्रवृत्त हो, और अपनी कामाग्नि को शान्त करने के लिए विधर्मियो के घरों में आबाद हो उनकी संख्या बढाने का प्रमुख कारण बन रही हो, आर्य समाज का विधवा विवाह सम्बन्धी प्रचार करना अति श्रेयस्कर है। जाति के उत्थान के लिए अति सहायक है। परन्तु पण्डित जी! क्षमा कीजिएगा, यह जो नियोग वाली बात है न। यह तो कुछ भद्दी सी प्रतीत होती है।

पण्डित—नहीं भाई नहीं। नियोग भद्दी बात नहीं। क्योंकि विवाह की भांति ही नियोग भी शास्त्रोक्त है। जब नियम पूर्वक विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष के समागम को पाप—बुरा—नहीं माना जाता। तब नियोग को जो कि परस्पर अनुमति से व सन्तानोत्पत्ति के ही अर्थ किया जाता हो, उसे भद्दी बात कैसे कहा जा सकता है। तुम सत्य समझो कि इस व्यभिचार और कुकर्म गर्भ-हत्यारूप आदि बुराइयो को रोकने का यही एक श्रेष्ठतम उपाय है। अतः जो जितेन्द्रिय रहना चाहें उनके लिए तो विवाह व नियोग की आवश्यकता ही नहीं। परन्तु जो इस असि-धार पर भीष्म, दयानन्द की भांति न चल सकें उनका

विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिए। समझे!

पुराणाचार्य—बात तो आप की ठीक है। क्या नियोग भी वेदशास्त्र सम्मत है?

पण्डित—हां! सुनिये, प्रथम असमर्थता की दशा में पुरुष अपनी स्त्री से कहता है:—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। ऋ० १०। १०

भावार्थ—हे सौभाग्य की इच्छा करने वाली देवी! तू मुझ से अन्य पति की इच्छा कर। क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न होगी। यह व्यवस्था स्त्री के लिए भी उसी प्रकार की है। अर्थात् वह भी जब रोगादि दोषो में ग्रस्त हो, तब अपने पुरुष से इसी प्रकार कहे।

इस के अतिरिक्त और प्रमाण सुनिये। अ० १८।३।१।२

१—इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्मै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥
२—उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ॥

भावार्थ—हे मनुष्य! यह स्त्री पतिलोक को स्वीकार करती हुई, तथा प्राचीन धर्म का पालन करती हुई, प्राप्त हुए तेरे पास आती है। तू इसके लिए सन्तान और धन दे। १।

हे विधवा नारि! तू इस मरे पति की आशा छोड़ के शेष पुरुषो मे जीवित पति को प्राप्त हो। और निश्चय रख कि जिस के लिए यह नियोग होगा, सन्तान उसी की होगी। २।

इसके अतिरिक्त मनु ने भी इसी उक्त वेदादेश के समर्थन मे कहा—

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ ६ । ५६

और इतिहास भी देखिये इसी सत्यसिद्धान्त का समर्थन करता है—

क—पवन ने केसरी की स्त्री से नियोग कर हनुमान पैदा किया । रामा० कि० ६६ । २६ ।

ख—व्यास ने भीष्मादि की सम्मति से अपने भाईयों के मरने पर उनकी स्त्रियों मे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को पैदा किया । (म० आ० अ० १०६)

ग—जब परशुराम ने क्षत्रियों का बिल्कुल संहार कर दिया तब ब्राह्मणों ने क्षत्राणियो से नियोग कर क्षत्रिय वंश चलाया । (म० आ० अ० १०४)

घ—वसिष्ठ ने सौदास की पुत्री मदयन्ती से नियोग कर अश्मक पुत्र पैदा किया । अ० १२२ ।

ङ—वसु ने शान्तनु की स्त्री गंगा से नियोग द्वारा भीष्म को पैदा किया । (म० आ० अ० ६३ श्लोक ८७)

इसी प्रकार पति के असमर्थ होने पर स्त्रियों ने नियोग किये:—

क—माद्री ने अश्विनी कुमारों से नियोग किया ।
(म० आदि० अ० १२४)

ख—कुन्ती ने धर्म, सूर्य, वायु आदि से नियोग किया ।
(म० आदि० अ० १२३)

ग—सत्यवती ने पराशर व शान्तनु से नियोग किया।
(म० आदि० अ० १२३)

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह नियोग की रीति भद्दी नहीं। शास्त्रानुकूल तथा इतिहास समर्थित है। आशा है आप समझ गए होंगे।

पुराणाचार्य—आप की कृपा से यह वैदिक सिद्धान्त भी मैंने भली भांति समझ लिया है। अब मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वैदिक धर्म भी इस्लाम और ईसायत की तरह तब्लीगी धर्म है? क्योंकि मुसल्मान और ईसाई कहते हैं कि हमारा ही धर्म तब्लीगी धर्म है। अन्य धर्म वाले तो अनधिकार चेष्टा करते हैं? कृपया वास्तविक बात क्या है? बता कर अनुगृहीत करें।

पण्डित—इस्लाम व ईसायत का यह दावा कि हमारा धर्म ही तब्लीगी धर्म है अन्य नहीं, यह बिल्कुल गलत है। क्योंकि वेदों में प्रचार व प्रेम द्वारा पतितों—अनार्यों को—आर्य श्रेष्ठ सदाचारी बनाने की स्पष्ट आज्ञाएं मौजूद हैं। जैसा कि:—

इन्द्र वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥

अर्थात्—परमात्मा का यह आदेश है कि तुम आलसी न बनो। वैदिक कर्मों के करने-कराने वाले बनो। कंजूस, स्वार्थी पापियों को परे हटाते हुए अर्थात् सुधार करते हुए, सारे संसार को वेदानुकूल चलने वाला आर्य ईश्वरभक्त सदाचारी श्रेष्ठ बनाओ। भाव यह कि अपवित्र पतित को पवित्र बनाने के लिए उससे घृणा न करके सदुपदेश, सत्संगति और सहानुभूति द्वारा वह आर्य श्रेष्ठ बनें, ऐसा यत्न करना चाहिए।

इसी आदेशानुसार कण्व ऋषि मिश्र देश में गए। और वहां जाकर १० हज़ार म्लेच्छों—अनार्यों—को अपने पवित्र धर्म की सुगन्धि से सुगन्धित किया। और वैदिक धर्म की मर्यादानुसार उन्हें गायत्री सिखाई। यज्ञोपवीत पहिनाए। तथा गुण कर्मानुसार ब्राह्मण आदि वर्ण भी दिए। इसके लिए भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व ३ अ० २१ देखिये:—

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।
म्लेच्छान्संस्कृत्य चाभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥१५॥
सरस्वत्याः प्रभावेण त आर्या बहवोऽभवन् ॥२८॥

पुनः इसी पुराण के इसी पर्व अ० २० में लिखा है:—

शिखा सूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।
यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् ॥७२॥
संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७३॥

अर्थ स्पष्ट है। आप समझ ही गए होंगे। इसके अतिरिक्त श्रीमद् भागवत पुराण के द्वितीय स्कन्ध अ० ४ श्लो० १८ में आता है:—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कसा
आभीरकङ्का यवना खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।

अर्थात् भगवान् विष्णु के नाम लेने से किरात-भील-यवन

और सीथियन व तातारी आदि जातियां सब शुद्ध हो जाते हैं।

और देखिये इसके अतिरिक्त पेशवाओं की डायरियों से सिद्ध होता है कि शिवा जी के जमाना में भी उनकी माता जीजाबाई और गुरु समर्थ रामदास जी के आदेशानुसार उन हिन्दुओं को जो भूल व जबर्दस्ती से अहिन्दू बन गए थे पुनः प्रायश्चित्त व शुद्ध करके हिन्दू बनाया जाता था। बाकायदा शुद्धि सभाएं भी बनी हुई थी। इन शुद्धि सभाओं ने कई महेटा ब्राह्मण गङ्गाधर गिलगारनी तलाजी भट्ट जोशी आदि जो मुसलमान हो गए थे शुद्ध किया था। इतना ही नही नवाब बीजापुर के अनेक जन्म के मुसलमान सिपाहियों को भी शुद्ध किया था। उस जमाने का एक और पुष्ट प्रमाण देखिये जो कि कलकत्ता की प्रसिद्ध पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' मई १९२४ मे एक प्रोफेसर की ओर छपा है।

आपने एक अंग्रेज सौदागर की चिट्ठी का हवाला देकर लिखा है:—

"यह (नेताजी पालकर) शिवा जी के अस्तबल का दरोगा था। इसको बादशाह औरङ्गजेब ने सन् १६६६ की लडाई मे कैद किया था। और देहली जाकर यह मुसलमान बन गया था। और मुस्लिम शासन काल मे एक सेवक के रूप मे पंजाब और अफगानिस्तान मे कई साल तक रहा। और दस साल के बाद किसी प्रकार समय पा कर अपने देश महाराष्ट्र मे आ गया। और अपने पुराने स्वामी की सेवा मैं उपस्थित हुआ और शिवा जी ने इसे पुनः शाका सम्वत्

१५१८ आषाढ वदी चतुर्थी को शुद्ध कराके हिन्दू बनाया।"

क्या अब भी कोई साहस पूर्वक कह सकता है कि वैदिक धर्म का यह शुद्धि आन्दोलन अनधिकार चेष्टा है। भाई! हम ने तो इस पवित्र जन्म सिद्ध अधिकार को उस समय भी नहीं छोड़ा जब कि मुसलमानों की हकूमत थी। हिन्दुओं के लिए धर्म प्रचार करना अति कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव था। उस समय भी धर्म दिवानों ने यथा समय इस काम को किया। दण्ड अतिकठोर था। फिर भी कई वीरात्माएँ अपने कर्तव्य का पालन करती हुई धर्म पर परवानों की भांति न्योछावर हो गई। परन्तु इस कर्तव्य कर्म को नहीं छोडा। उदाहरण के तौर पर देहली के शासक फिरोजशाह तुगलक को जब यह पता चला कि एक ब्राह्मण जिसने लकडी के बुत बनाए हैं, जिन की पूजा हिन्दू और पडोसी मुसलमान करते हैं, और जो उस के प्रभाव से शुद्ध हो चुके हैं, इस पर बादशाह ने उसे बुत सहित फासी पर चढा कर जला दिया। (देखो तारीख फिरोजशाही पृ० ३८८)

शाहजहान के पास जब यह शिकायत पहुंची कि सरहिन्द के दलपतराय ने एक मुसलमान और ६ मुस्लिम औरतो को हिन्दू बना लिया है और हिन्दुआना नाम भी रख दिए हैं तब उसे बुलवा कर आज्ञा दी कि तुम अपराधी हो अतः इस्लाम कबूल कर लो अन्यथा तुम्हें कत्ल किया जायगा। उसके इन्कार करने पर उसे कत्ल किया गया। (देखो शाहनामा)

सिकन्दर लोधी के शासन काल की घटना है कि उस ने

जि० मुरादाबाद के निवासी जोधन नामी ब्राह्मण को केवल इसीलिए जिन्दा जलवा दिया था कि उसने अपने पवित्र आर्य धर्म की खूबियों का प्रचार मुसलमानों में किया। और बहुत से मुसलमान जिस पर शुद्ध होने को तैय्यार हो गए थे। (देखो ता० फ़रिश्ता जिल्द अव्वल पृ० २३६)। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि आर्य धर्म तब्लीगी धर्म है। इसकी तब्लीग अर्थात् प्रचार में मेरे भाई! एक विशेषता आरम्भ से रही है। और वह यह है कि इसके प्रचारकों ने इसके लिए न तो झूठ व धोखे से काम लिया, व खून बहाये, न तलवार का भय दिखाया, न स्वर्ग की मिथ्या कपोल कल्पित प्रशंसा कर किसी को बर्गलाया, न किसी को कन्या विवाह का लालच दिया, न ही किसी को बेसूद कर्ज़ा देने की बात कह कर फुसलाया और नहीं किसी पर अमानुषिक व्यवहार किया। विपरीत इसके किया तो यह किया कि गोलिया खाई छुरे खाए लाठियों की मार सही और राजकीय कठोर दण्ड सहे। आज उनकी इन कुर्बानियों का ही यह प्रत्यक्ष फल दृष्टि गोचर हो रहा है कि जो सहस्रो की संख्या में विधर्मी यवन, ईसाई-धड़ाधड़ इस पवित्र सत्य सनातन वैदिक धर्म की शरण में आ कर अपने जन्म को सफल कर रहे हैं।

पुराणाचार्य—गुरुवर! मैं अब अच्छी प्रकार समझ गया हूँ कि वैदिक धर्म तब्लीगी धर्म है। इस के प्रचारक अपने आदर्श जीवन तथा अपने धर्म की विशेषताएं बता कर अन्य मतावलम्बियों को अपनी ओर मनुष्यमात्र की भलाई का सद्भाव

रख कर सुधार के लिए सच्ची मानवता सिखाने के लिए आकर्षित करते हैं। अस्तु अब मैं चाहता हूँ कि आप मुझे कोई ऐसी पुस्तक बताएं जिसे पढ़कर मैं सब वैदिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त कर सकूं ?

पण्डित—आप ने क्या सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा है ?

पुराणाचार्य—नहीं, क्योंकि मैंने सुना था कि उस में सिवाय खण्डन के और कुछ नहीं है।

पण्डित—सुनी सुनाई बात को अब भाई छोड़ो। तुम आरम्भ से उसे पढ़ो। उस में वैदिक सिद्धान्तो का युक्ति प्रमाण से मण्डन और अवैदिक कपोल कल्पित मतो का युक्ति प्रमाण से खण्डन किया हुआ मिलेगा। वह जगत्प्रसिद्ध ऋषि का जगत्प्रसिद्ध पुस्तक है। और सभी ससार की प्रसिद्ध २ भाषाओं में अनूदित है। अत: उस मे सत्य-अर्थ का ही प्रकाश है। (पुस्तक अलमारी स निकाल कर) लो इसे ले जाओ। अति तत्परता से अध्ययन करो। जो समझ में न आए, उसे जब चाहो आकर पूछ लो। अच्छा, अब जाओ।

पुराणाचार्य—आप का धन्यवाद है, अच्छा भगवन्नमस्ते।

(पुराणाचार्य का अपने स्थान को प्रस्थान)

षष्ठ प्रकरण समाप्त

सातवां प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—देवाश्रम का नाला।

समय—दोपहर बाद २ बजे

(रविवार का दिन है। प० धर्मज्ञ जी भोजनादि से निवृत्त हो कर भ्रमण के लिए निकले तो आश्रम के नाले पर आपको एक गान्धी-भक्त घूमते हुए मिले जिनका नाम चौ० संग्राम सिंह था। मिलते ही आप बोले—)

पण्डित—नमस्ते भगवन्! चिर काल के बाद आप के दर्शन हो रहे हैं। कहिए, कहीं बाहिर गए हुए थे?

गान्धी-भक्त—हां, पूज्य महात्मा जी के आदेशानुसार सत्याग्रह कर के स्वराज्य मन्दिर में १८ मास के लिए चला गया था। अब कल ही मुक्त होकर आया हूं। कहिए आप का क्या समाचार है? समाज का कार्य तो खूब चल रहा होगा न?

पण्डित—सब भगवान् की कृपा है। अभी समाज का उत्सव हो कर हटा है। इस वर्ष उत्सव का विशेष प्रभाव रहा। बहुत से सदस्य बढ़ गए हैं। दैनिक सत्संग नियमतः होते हैं। वेद की कथा भी होती है।

गान्धी भक्त—वाह! वाह!! तो आप का समाज खूब उन्नति पर है। कृपा करके पण्डित जी! एक काम और करो कि कुछ राजनीति की बातें भी आप अपने लोगों को बताया करें। क्यों

कि इस विषय के जानने की अति आवश्यकता है। वेदों में यह बातें आप को भला कहां मिल सकती हैं। आप वर्तमान नेताओं की लिखी हुई पुस्तकों को मंगवालें। उन से अति लाभ होगा। ठीक है न ?

पण्डित—आप का धन्यवाद। परन्तु आप को यह विश्वास होना चाहिए कि कोई ऐसी विद्या नहीं कि जिस का वेदों में वर्णन न हो। वेद तो सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। अतः राजनीति का वर्णन जैसा आप को इन में मिल सकता है अन्यत्र न मिलेगा।

गान्धी भक्त—सचमुच ऐसा है तो मुझे क्षमा करना। भाई! मैंने अनजान पन में ऐसा कह दिया था। क्षमा करना। अच्छा अब जरा कृपा करके बताइये कि वेद एक सत्तात्मक राज्य का समर्थन करते हैं या प्रजासत्तात्मक राज्य का ?

पण्डित—भगवन्! वेद प्रजा सत्तात्मक राज्य का ही समर्थन करते हैं। जैसा कि अथर्व ३। ४। १ में आता है:—

आ त्वागन् राष्ट्रं सहवर्चसोदिहि
प्राङ् विशांपतिरेकराट् त्वं विराज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥

भावार्थ—इस में राजा को उपदेश है, कि हे राजन्! तुझे राष्ट्र ने पसन्द किया है। अतः तेजस्वी बन कर व्यवहार कर। न्याय पूर्वक प्रजा का पालन कर। प्रजा का प्रिय बन। और सब प्रजा जनों को प्राप्त हो। अर्थात् निर्भय होकर विचर। परन्तु इस बात को याद रखना, कि—

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः।

अ० ३।४।२

तुझे प्रजा ने राज्य के लिए स्वीकार किया है। यदि उनकी सम्मति न हुई तो तुझ से राज्य छीना जायगा। अतः ऐसा प्रवन्ध कर कि जिस से प्रजा संतुष्ट रहे। और किसी को क्लेश न पहुंचे। हमारी इच्छा है कि.—

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतोऽजिरः संचरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु वहुं वलिं प्रति पश्यासा उग्रः॥

अ० ३।४।३

तेरे राज्य में याज्ञिक-अग्निहोत्री-वहुत हों। देश देशान्तर में चतुर दूत भेजे जावे। तेरे राष्ट्र में स्त्रियों का सतीत्व धर्म सुरक्षित रहे। सन्तान विद्यादि गुण सम्पन्न हो। ऐसा प्रवन्ध होने पर ही देख लेना कि तुझे बहुत कररूप में भेंट मिलेगी।

इतना ही नहीं। वेद मे तो निर्वाचित राजा कैसा होना चाहिए इस का भी विशद वर्णन है। देखिये:—

इन्द्रो जयाति न पराजयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह॥

अ० ६।१०।१

भावार्थ—(ऋषि भाष्य) हे मनुष्यो! जो इस मनुष्य समुदाय में परमैश्वर्य का कर्ता, शत्रुओं को जीत सके, जो शत्रुओ से पराजित न हो, राजाओं मे सर्वोपरी विराजमान प्रकाशमान हो, वही सभापति—राजा—होने के अत्यन्त योग्य है। वही सत्करणीय और शरण लेने योग्य है।

अ ह ह ! कैसा स्वर्गीय समय है। प्रजा राजा को चुनती है और उसे अपना कर्तव्य बतलाती है। तथा पूर्ण सहयोग के लिए पूर्ण विश्वास दिलाती है। ऐसी अवस्था मे मेरा विश्वास है कि निर्वाचित राजा, प्रजा पर किसी प्रकार का कभी भी अन्याय नहीं कर सकता। उसे तो प्रजा का सन्तानवत् शुभ-चिन्तक बन कर पालन करना ही होगा। बताइये, यह बात, प्रजा के साथ न्याय पूर्वक वर्ताव, भला एक सत्तात्मक राज्य मे क्यो कर हो सकेगी। स्वतंत्र राजा तो प्रजा का नाश करता है। न किसी को अपने से ऊपर होने देता है। श्रीमानो को लूट खूंट अन्याय से दबा कर अपना ही प्रयोजन सिद्ध करता है। अत स्वतंत्र राजा नहीं होना चाहिए। यह वेद की पवित्र शिक्षा है। आशा है आप समझ गए होंगे ?

गान्धी भक्त—राज्य प्रजातन्त्र होना चाहिए इस विषय मे जो आपने वेद-वचन सुनाए उन्हें सुन कर सचमुच मेरा चित्त अति प्रसन्न हुआ है। अब आप बतावें कि राजा राज्य की व्यवस्था किस प्रकार से करे ? जिस से राष्ट्र की उन्नति हो, और किसी पर अन्याय न हो सके।

पण्डित—सुनिये भगवन् ! राज्य की सुव्यवस्था के लिए मेरे पवित्र वेद में राजा को तीन सभाओं के निर्माण की आज्ञा है। जैसा कि—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।

ऋ०, ३ । ३८ । ६

मे लिखा है कि ईश्वर स्वयं उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा

प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या स्वातंत्र्य धर्म. सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

"इस वेद-वचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महा विद्वानों को विद्या सभा का अधिकारी धार्मिक विद्वानों को धर्म सभा का अधिकारी, प्रशसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब से सर्वोत्तम गुणकर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उस को राज सभा का पति रूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।"(सत्यार्थप्रकाशानुसार) "तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब लोग वर्तें। सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्व हित करने के लिए परतंत्र और धर्मयुक्त कामों में··· स्वतन्त्र रहें।" (स० प्र० षष्ठ समु०)

इस प्रकार वेदों में बीज रूप से राजनीति धर्म का वर्णन है। यदि विस्तार से देखना चाहें तो मनुस्मृति के ७ वे और ९ वे अध्याय में राजनीति का वर्णन देख सकते हैं। जिस में स्पष्ट रूप से राज कर्मचारी कैसे होने चाहिएं, मन्त्री में क्या २ गुण हों, दुर्ग कितने और किस प्रकार के बने हुए हों, अपराधी की क्या परीक्षा है, उसे कितना दण्ड देना चाहिए, विजित राज के परिवार के साथ कैसा वर्ताव करे, अनाथ, आतुर, ब्राह्मणादि के प्रति क्या कर्तव्य है, कर का विनियोग कहा किस रीति से ग्रहण करे, कोष का बढ़ा हुआ धन कहां किस रीति से व्यय करे, इत्यादि बातों का वर्णन है।

आशा है आप राजनीति सम्बन्धी इन विचारो को सुनकर सन्तुष्ट हो गए होंगे।

गान्धी भक्त—निःसन्देह, इन विचारों को सुन कर मुझे सन्तोष हो गया है। भला एक बात तो बताएं कि जैसी पूज्य महात्मा गान्धी जी के अन्दर स्वदेश भक्ति, स्वभाषा-प्रेम, स्वराज्य प्राप्ति की तडप है ऐसी किसी हमारे पूर्वज पुरुष मे भी थी ?

पण्डित—क्यो नहीं ! अवश्य थी। प्रतीत होता है कि आप ने सत्यार्थप्रकाश को नहीं पढा। भगवन् ! यदि पढते तो आप को ज्ञात हो जाता कि वर्तमान युग के निर्माता स्वनाम धन्य महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अन्दर कितनी स्वदेश भक्ति, स्वभाषा प्रेम और स्वराज्य के लिए तडप थी। सच तो यह है कि महात्मा गान्धी जी उस समय तक प्रसिद्ध भी न हुए थे, जब कि प्रशसित महर्षि ने स्वदेशी राज्य की हिमायत की थी। देखिये मेरे आचार्य जी स० प्र० ८ वा समु० पृ० १४५ (बीसवीं बार) में क्या लिखते हैं—

"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतांतर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजापर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा और अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इस लिए जो कुछ वेदादि शास्त्रो में

व्यवस्था व इतिहास लिखे हैं उसी का आदर करना भद्र पुरुषों का काम है।"

पुनः पृ० १७१ पर लिखते हैं:—

"देखो, जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यावर्त्त व अन्य भूगोल देशों में बडे आनन्द से मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे। क्योंकि दूध घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।"

पुनः १७० पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होनेके कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढना पढाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या-भाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म है। जब आपस में भाई भाई लडते हैं तभी तीसरा विदेशी आन कर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो ५ हजार वर्ष के पहिले हुई थीं, उनको भी भूल गए?

"देखो! महाभारत युद्ध मे.........आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया। परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जानें यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा, या आर्यों को सब सुखों से छुडा कर दुःख सागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग मे आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख

बढा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करें कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।"

भगवन्! यह वह शब्द हैं जो मेरे आचार्य के स्वदेश प्रेम और स्वदेशोन्नति के रंग से रंगे हृदय से निकले हुए हैं। इस से आप भली प्रकार जान सकते हैं कि आर्य समाज के संस्थापक के हृदय मे स्वदेश भक्ति व स्वराज्य प्राप्ति की कितनी तड़प थी?

गान्धी भक्त—मैं क्या कहूं। मुझे तो पता ही वास्तव में आज लगा है कि ऋषि क्या था। आपका अति धन्यवाद। वास्तव में ऋषि दयानन्द ही इस युग के प्रथम महापुरुष हैं जिन्होंने विदेशी राज्य के दोष दिखा कर स्वदेशीय राज्य का समर्थन किया है। मेरी बारंबार उस ऋषि को बन्दना है। कृपया एक बात और तो बताए कि क्या कभी हम चक्रवर्ती राज्य भी कर चुके हैं?

पण्डित—हां, हा! क्यों नहीं? प्राचीन इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञान होता है कि "इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाडव तक सर्व भूगोल मे आर्यों का राज्य और वेदो का थोडा २ प्रचार आर्यावर्त्त से भिन्न देशों मे भी रहता था।"

(स० प्र० ८ वां समु० पृ० १४५)

पुनः पृ० १७६ में ऋषि जी लिखते हैं —

"सृष्टि से ले के पाच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश मे माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे। क्योंकि कौरव पाण्डव पर्यन्त यहां के राज्य व राज

शासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलते थे। "
"'स्वायंभुव राजा से लेकर पांडव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड कर नष्ट हो गए। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि मे अभिमानी, अन्याय-कारी अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।"

गान्धी भक्त—बस, बस, महाराज! मेरी सन्तुष्टि हो गई। आप ने मुझ पर अत्युपकार किया है। मेरी रुचि कुछ वेद व आर्य समाज से हट सी रही थी। वैसे मैं एक आर्यसमाजी का बेटा हूं। मैंने समझा कि गान्धी जी से बढ़ कर शायद ही कोई स्वदेश भक्त हो। आप से आज बातचीत कर के मेरा सारा भ्रम मिट गया है। मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि गान्धी जी के महर्षि दयानन्द ही पथ प्रदर्शक थे। मैंने जेल में सुना भी था कि अछूतोद्धार, विधवा विवाह, राष्ट्रभाषा-आर्य भाषा-का प्रचार स्वदेशी वस्त्रधारण आदि सब आन्दोलनों पर बाल ब्रह्मचारी आदर्श महापुरुष दयानन्द ने ही सब से प्रथम आवाज़ उठाई व प्रकाश डाला था। अस्तु मैं आप का पुनः धन्यवाद करता हूं। आप का समय लिया। मैं आप से मुलाकात करके बड़ा ही प्रसन्न हुआ। मैं फिर कभी आप के घर पर ही आकर दर्शन करूंगा। अच्छा नमस्ते!

पण्डित—नमस्ते भाई नमस्ते! जब आप आना चाहें अति प्रसन्नता से आ सकते हैं। वह घर आप ही का है। निःसंकोच आया करें। दर्शन दिया करें।

(दोनों का स्व २ स्थान को प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—देवाश्रम की व्यायाम शाला।

समय—शाम ५ बजे।

(भ्रमणादि से निवृत्त होकर पण्डित धर्मज्ञ जी नित्य नियमानुसार व्यायाम के लिए आये तो निकट श्मशान भूमि में कुछ लोगों का जमघट देख कर देवीराम पहलवान से बोले—)

पण्डित—क्यों भाई देवीराम! यह आज जमघट कैसा? क्या आज किसी का......

देवीराम—(बात काट कर) अजी आप को पता नहीं। वह हैं न कमेटी के प्रधान मा० सोहनलाल जी! बड़े शोक की बात है कि आज उनका एकलौता बेटा, अजी, जिस की आयु पण्डित जी अभी २१ वर्ष की थी, बेचारा सदा के लिए सो गया। उसकी अन्त्येष्टि हो रही है।

पण्डित—(जल्दी से वस्त्र पहिन कर, आश्रम से संस्कारविधि लेकर श्मशान भूमि में पहुंच कर मास्टर जी को सम्बोधन कर) मास्टर जी! बड़ा शोक हुआ। मैं तो आज बाहिर चला गया था। अभी देवीराम पहलवान से ज्ञात हुआ कि आप को असह्य पुत्र-वियोग का आघात हुआ। अच्छा ईश्वर की इच्छा ही ऐसी है। आप धैर्य धारण करें। तो क्या घृत सामग्री आदि सामान मंगवा लिया है?

मास्टर—सामान कैसा!

पण्डित—अजी, अन्त्येष्टि संस्कार के लिए चाहिए न।

मास्टर—वाह पण्डित जी! क्या मासूम बच्चों को भी जलाया जाता है? उन्हें शास्त्र विधि से दफनाया जाता है। यह आप क्या कहते हैं?

पण्डित—आप तो वैदिक धर्मी हैं। अनुभवी-शिक्षक हैं। क्या अभी तक आपने वेद की इन आज्ञाओं को नहीं सुना?

आरभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते।
शरीरमस्य संदहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके॥

अ० १८।३।७१

अर्थात्—हे अग्नि! तू इस मृत देह को प्राप्त हो। तेरा हरण सामर्थ्य तेजस्वी हो। इस प्राणी के मृत शरीर को अच्छी प्रकार जलादे। और इसको पुण्यात्माओं के लोक में धारण कर।

एक और प्रसिद्ध प्रमाण सुनिये:—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर-कृत ँ स्मर। य० ४०।१५

अर्थात्—हे जीव! तू शरीर के छुटते समय ओ३म् नामी परमात्मा का स्मरण कर। सामर्थ्य के लिए स्मरण कर। और किये हुए को स्मरण कर। तू जीवात्मा अविनाशी अमृत है। और यह भौतिक शरीर भस्मान्त है अर्थात भस्म करने पर्यन्त है। इसके आगे मृतक के लिए कोई क्रिया बाकी नहीं रहती। पुराणादि में जो दशगात्र, एकादशाह, गयाश्राद्ध व सपिण्डी कर्म आदि क्रियाएं हैं, सब अवैदिक हैं। क्योंकि-मृतक के साथ जीवित काल में ही सम्बन्धियों का सम्बन्ध होता है

बाद में नहीं। वह तो अपने कर्मानुसार ईश्वर की न्याय व्यवस्था से अगला जन्म धारण करलेता है। अतः मास्टर जी! मृत शरीर चाहे एक दिन का हो चाहे १०० वर्ष का हो, उसका अन्त तो वेद के अनुसार भस्म पर ही है। अन्य रीतिया दबाना, बहाना, जंगल में फेंक देना, या मसाला भर कर रखना आदि सब वेद विरुद्ध होने से अमान्य एवं दोष युक्त व हानिकारक होने से अनुपादेय हैं। देखिये आप के आचार्य जी क्या लिखते हैं:—

मुर्दों के गाडने से संसार को बडी हानि होती है। क्योंकि वह सड के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न—देखो जिससे प्रीति होती है उसे जलाना अच्छी बात नहीं और गाडना जैसा कि उसको सुला देना है। इसलिए गाडना अच्छा है।

उत्तर—जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर मे ही क्यों नहीं रखते हो। और गाडते भी क्यो हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी; वह निकल गया। अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाडते हो? क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझ को भूमि मे गाड देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख आख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना, कौनसी प्रीतिका काम है? और सन्दूक में डाल के गाडने से बहुत दुर्गन्ध हो कर पृथिवी से निकल वायु को बिगाड कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है। दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से क़म ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौडी

भूमि चाहिए। इसी हिसाब से सौ हज़ार व लाख अथवा क्रोडो मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है। न वह खेत, न बगीचा और न बसने के काम की रहती है। इस लिए सब से बुरा गाडना है। उससे कुछ थोडा बुरा जल में डालना। क्योंकि उसको जल-जन्तु उसी समय चीर फाड़ कर खालेते हैं। परन्तु जो कुछ हाड व मल जल में रहेगा वह सड कर जगत् को दुःख दायक होगा। उससे कुछ एक थोडा बुरा जगल मे छोडना है। क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूच खाएंगे। तथापि जो उसके हाड की मज्जा और मल सड़ कर जितना दुर्गंध करेगा, उतना जगत् का अनुपकार होगा। और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है। क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु हो कर वायु मे उड़ जाएंगे।

प्रश्न—जलाने से भी तो दुर्गन्ध होता है ?

उत्तर—जो अविधि से जलावें तो थोडा सा होता है। परन्तु गाडने आदि से बहुत कम होता है। और जो विधि पूर्वक जैसा वेद मे लिखा है मुर्दे के तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी पांच हाथ लम्बी, तले मे डेढ़ बीता अर्थात् चढा उतार वेदी खोद कर शरीर के बराबर घी, उस में एक सेर मे रत्ती भर कस्तूरी, माशाभर केसर, न्यून से न्यून आधा मन चन्दन, अधिक चाहें जितना लें। अगर तगर कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियो को वेदी में जमा उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक २ बीता तक भर के घी की आहुति देकर जलाना चाहिए। इस प्रकार से दाह करे तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो

किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध पुरुषमेध यज्ञ है। और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डालें। चाहे वह भीख मांगने वा जाति वालो के देने अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो। परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाडने आदि से केवल लकडी से भी मृतक का जलाना उत्तम है। क्योंकि एक विस्वा भर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखो करोड़ो मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाडने के समान अधिक नहीं बिगडती। और कबर के देखने से भय भी होता है। इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है।"

(स० प्र० १३ वा समु० पृ० ३१४, २०वी वार)

कहिये, मास्टर जी! क्या यह वेद का कथन और आचार्य का उपदेश निरर्थक है?

मास्टर—नहीं भगवन्! मुझ पर वेद तथा ऋषि के कथन का अति प्रभाव पडा है। अब मैं जाति विरादरी की पर्वाह न करके वैदिक विधानानुसारमृतक पुत्र का दाह कर्म संस्कार ही कराऊंगा। आप का धन्यवाद है कि आपने ऐन मौका पर पधार कर मुझे एक अवैदिक कर्म मे प्रवृत्त होतेर को बचाया। महाशय जी! यदि कहीं आप न आते तो मैं तो यह अवैदिक कर्म बस किये ही बैठा था। (विरादरी वालों से) बन्धुओ! आप भी सुन चुके हैं कि मृतक को गाड़ने की अपेक्षा जलाना ही उत्तम है। अतः अब आप चाहे बुरा मानें या भला, मैं अपने मृतक-पुत्र का संस्कार विधि के अनुसार अन्त्येष्टि संस्कार ही कराऊंगा।

बिरादरी—हमे कोई ऐतराज नहीं। आप मास्टर जी! जैसा चाहे करें। हम आप का साथ भला कैसे छोड़ सकते हैं। हम पर भी वेद तथा ऋषि उपदेश का अनुपम प्रभाव पड़ा है।

मास्टर—(अपने नौकर से) अरे प्रभाती! जाओ जल्दी, आत्माराम पंसारी से मेरा नाम लेना (पर्चा देकर) इस पर्चे के मुताबिक सारा सामान बस मिण्टो मे जल्दी भाग कर जाओ, ले आओ।

प्रभाती—अभी लीजिए। अभी, मिण्टो मे आया।

(साईकल ले चल पड़ा।)

बिरादरी—वह आगया, वह आगया। (परस्पर) देखो जी कितनी जल्दी सामान लाया। वाह प्रभाती! वाह कमाल कर दिया। लो जी अब वेदी बनाओ। (पण्डित जी से) पण्डित जी महाराज, हुकम करो, किस २ रीति से चिताचयन की जावे।

पण्डित—पहिले ऐसे रक्खो फिर ऐसे रक्खो। देखो जब यहां तक लकड़ी चुनीजावें, फिर मृतक शरीर को रखना। (इसी रीति से चिता तैय्यार होने पर) मास्टर जी! आईये अब मैं मन्त्र पढ़ता हू। आप और (एक सज्जन की बाहु पकड़ कर) आप घृत और सामग्री की स्वाहा पर आहुति डालते जावें। (सस्कार समाप्त। पुन बरामदे में बैठकर प० जी ने कहा कि सब सज्जन शान्त चित्त होकर बैठ जावें। प्रार्थना आरम्भ होती है। इस पर सब बैठ जात हैं। प्रार्थना होनी है) हे कर्म फल प्रदाता ईश्वर! यह सुकुमार लाल आप की पवित्र गोद मे आ रहा है। इसे शान्ति व सद्गति प्रदान करो। और हम सब दुःखी सम्बन्धियों को धैर्य प्रदान कीजिए। (प्रार्थना के बाद सब मास्टर जी से अन्तिम समवेदना प्रकट करते हैं, और

आश्रम के नाले पर सब स्नान करके स्व २ स्थान को चले जाते हैं। परन्तु मास्टर जी पण्डित जी को वहीं ठहरा कर कहते हैं—)

मास्टर—जो होना था वह तो गया हो। अब क्या करना बाकी है?

पण्डित—बस, परसों आकर अस्थि-संचयन करनी है।

मास्टर—फिर!

पण्डित—फिर क्या? संस्कार विधि के लेखानुसार जैसा आप उचित समझें चाहे खेत में दबादें चाहे पानी में बहादे। मेरे विचार में खेत में डालना ही अच्छा है। खाद बन जाएगा, क्यों मास्टर जी ठीक है न।

मास्टर—बस ठीक हैं। आप जैसा कहते हैं। मेरी इच्छा कुच्छ दान करने की है। बताईये कहा २ देना उचित है?

पण्डित—मास्टर जी! आप जानते ही हैं। मैं क्या कह सकता हू।

मास्टर—नहीं नही फिर भी आप की सम्मति लेना आवश्यक है।

पण्डित—अच्छा तो कितना दान करने का विचार है?

मास्टर—कोई ५००) पाच सौ रुपया।

पण्डित—ठीक है, तो आप फिर २५०) वेद प्रचार १००) कन्या गुरुकुल, ५०) दलितोद्धार, ५०) गु० कु० कागड़ी ५०) उपदेशक विद्यालय लाहौर आदि संस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं।

मास्टर—बस ठीक है। इसके अतिरिक्त १००) रु० स्थानीय समाज को वैदिक साहित्य के वितरण के लिए दूंगा। आप सब की घोषणा कर सकते हैं?

पण्डित—कल पारिवारिक सत्संग में जहा बहुत उपस्थिति होती है, आप के कथनानुसार घोषणा हो जायगी।

(इसके बाद मा० जी और पं० जी का स्व० २ स्थान को प्रस्थान)

(७ वां० प्रकरण समाप्त)

८ वां प्रकरण

प्रथम दृश्य

स्थान—म. विक्रमपाल जी का गृह ।

समय—प्रात. ८½ बजे ।

(म० विक्रमपाल जी के गृह पर आज पारिवारिक सत्संग हो रहा है । सब आर्य भाईयों ने मिल कर प्रथम सन्ध्याग्निहोत्र किया । तत्पश्चात् प्रार्थना भजन के बाद गृहपति विक्रमपाल ने पं० धर्मज्ञ जी से कहा—)

गृहपति—भगवन् ! यह सब भाई आप के पवित्र उपदेश को सुनने की इच्छा रखते हैं । अतः कृपया आज हमें गृहस्थ सुधार का उपदेश दीजिएगा ।

पण्डित—आप लोगो की जैसी आज्ञा । (खड़े होकर) बहिनो ! और भाईयो ! आज मैं आप के सामने बताना चाहता हूं कि हम गृहस्थी अपने गृहस्थ को कैसे सुधार सकते हैं । सब से प्रथम हमें (मनु० ४-९२ के अनुसार) प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर, परमात्मा की ('प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं,० ऋ० ७।४१।१-५ मन्त्रों द्वारा) स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिए । फिर शौच, दन्तधावन, व्यायाम, स्नानादि क्रियाओं से निवृत्त हो कर पञ्चयज्ञों में तत्पर होना चाहिए । सुनिये, वह पंच यज्ञ यह है :—

१. ब्रह्मयज्ञ—वेदादि का पठनपाठन, सन्ध्योपासन और योगाभ्यास जिस में होता है ।

२ देवयज्ञ—अर्थात् विद्वानों का संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणों का धारण करना और जलवायु की शुद्धि व आरोग्यता के लिए अग्निहोत्रादि जिसमें करना होता है।

३ पितृयज्ञ—जिस में माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी होती है।

४. अतिथियज्ञ—जिस मे अकस्मात् आये हुए विद्वान् सदाचारी, धर्मात्मा, परोपकारी आदि गुणवाले अतिथि की सेवा करके उपदेश लाभ करना होता है।

५. भूतयज्ञ—जिस मे उपकारी प्राणियों के प्रति कर्तव्य पालन करना होता है।

प्यारे भाईयो! इन नैत्यिक पांच महायज्ञों के करने में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। इन का बडा लाभ है। जब से हमने इन कर्मों को त्यागा तब से ही सचमुच हमारी दुर्दशा हो रही है। यदि आप चाहते हैं कि गृहस्थ स्वर्ग बने तो जहां हमें इन कर्मों को नियमत: करना होगा। वहां वेद के निम्न उपदेशों पर भी अमल करना होगा। अन्यथा सुधार असम्भव है। वेद के पवित्र उपदेश यह हैं :—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

अ० ३।३०।१

भावार्थ—(ऋषिभाष्य) हे गृहस्थो! मै ईश्वर तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम्हारा, जैसी अपने लिए सुख की इच्छा करते और दु:ख नहीं चाहते हो, वैसे माता, पिता सन्तान, स्त्री, पुरुष, भृत्य, मित्र, पडोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो। मन से

सम्यक् प्रसन्नता और वैर विरोधादि रहित व्यवहार को तुम्हारे लिए स्थिर करता हूं। तुम हनन न करने योग्य गाय उत्पन्न हुए बच्छड़े पर वात्सल्य भाव से जैसे वर्तती है वैसे एक दूसरे से तुम भी प्रेम पूर्वक कामना से वर्ता करो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥

अ० ३।३०।२

भावार्थ—हे गृहस्थो! जैसे तुम्हारा पुत्र, माता के साथ प्रीति युक्त मन वाला अनुकूल आचरण युक्त और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार प्रेम वाला होवे। वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्ता करो। स्त्री पति की प्रसन्नता के लिए माधुर्य-गुण युक्त वाणी को कहे। वैसे पति भी प्रसन्न होकर पत्नी से सदा मधुर भाषण किया करे।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

अ० ३।३०।३

भावार्थ—हे गृहस्थो! तुम्हारे में भाई, भाई के साथ द्वेष कभी न करे। तथा बहिन भाई भी परस्पर द्वेष मत करो। किन्तु सम्यक् प्रेमादि गुणों से युक्त समान गुण-कर्म-स्वभाव वाले हो कर मंगल कारक रीति से एक दूसरे के साथ सुखदायक वाणी को बोला करो।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः। अ० ३। ३०। ६

भावार्थ—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा जलपान स्नान आदि का स्थान व्यवहार एक जैसा हो। तुम्हारा खान पान साथ २ हुआ करे। तुम्हारे एक जैसे अश्व आदि यान को जोते संगी हो। और तुम को मैं धर्मादि व्यवहार मे भी एकी भूत करके नियुक्त करता हू। जैसे चक्र के आरे चारों ओर से नाल रूप काष्ठ में लगे रहते हैं। अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान यज्ञ में मिल के अग्नि आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं। वैसे सम्यक् प्रीति वाले तुम मिल के धर्मयुक्त कर्मों को तथा एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो।

यह हैं सज्जनो ! वेद की आज्ञाएं। यदि हम सब इनके अनुसार आचरण करें तो हमारा कल्याण अनिवार्य है। हमें स्वाध्याय मे भी तत्पर रहना चाहिए। क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्र को पढता है विचारता है, वैसे २ उस विद्या का विज्ञान बढता जाता है, और उसी में रुचि बढती जाती है। सत्य शास्त्र ही सच-मुच मनुष्य का तीसरा नेत्र है जिस के द्वारा सर्व संशयों का निवारण, विद्वानो से प्रीति और अतीतकाल का ज्ञान होता है। इसीलिए आचार्यों ने स्वाध्याय को तप लिखा है। अतः हमे चाहिए कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करें। स्वाध्याय के लिए आजकल विद्वानो ने अति गंभीर विषयो की अपनी सरल सुमधुर भाषा में व्याख्याएं लिखी हैं। उन से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। जैसे कि आचार्य देवशर्मा जी की 'वैदिक विनय' स्वर्गीय पं० चमूपति जी की 'जीवन ज्योति' श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी द्वारा संपादित 'स्वाध्याय संग्रह' और श्री स्वा० अच्युतानन्द सरस्वती जी द्वारा प्रकाशित चारों

वेदों के ४ शतक आदि उपयोगी पुस्तकों का नाम लिया जा सकता है। अस्तु ! कहीं अधिक देर न हो जाए। अतः मैं चाहता हूँ कि सब भाई मिलकर ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त का जिस मे परम कारुणिक पिता परमात्मा ने अपने अमृत पुत्रों को संगठन का उपदेश दिया है—सब प्रेम से पाठ करें—

ओ३म् । संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥

अर्थात्—हे सुखों के वर्षक, सब के स्वामी, प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आप ससार के सब पदार्थों को अपनी उचित व्यवस्था के अनुसार परस्पर मिलाते हो। और फिर उनका वियोग भी आप ही करते हो। आप अपनी शक्तियों से इस धरती पर चमक रहे हो। हे ऐसे महान् सामर्थ्य वाले भगवन्! आप हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य दीजिए।

ओ३म् । संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥

अर्थात्—(सब प्रकार के ऐश्वर्य के अभिलाषी) हे पुरुषो ! तुम परस्पर मिल कर चलो। मिल कर बात-चीत करो। ज्ञानी बन कर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ। जैसे कि तुम से पहले विद्वान् देव पुरुष सम्यक् ज्ञानवान् और एक मति वाले हो कर अपना भाग प्राप्त करते रहे हैं।

ओ३म् । समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ॥

समान मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

अर्थात्—तुम्हारे शुभ विषयों के गभीर विचार मिल कर हो। विचार के लिए तुम्हारी सभाए एक जैसी हो, जिन में तुम सब मिल कर बराबर बैठ सको। तुम्हारा मनन मिल कर हो। निश्चय मिल कर हो। मैं ईश्वर तुम्हें मिल कर विचार करने का उपदेश करता हूँ। और तुम को परस्पर उपकार के लिए समान रूप से त्याग के जीवन में नियुक्त करता हू।

ओ३म्। समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

अर्थात्—तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिल कर हो। तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हो। तुम्हारे अन्तःकरण मिले रहें जिस से परस्पर सहायता से तुम्हारी भर पूर उन्नति हो॥

परमात्मा के इस उपदेश को सदा स्मरण रक्खो भाईयो!

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
ऋ० ५।६०।५

अर्थात्—हम सब (शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः, य० ११।५ के अनुसार) उस अविनाशी पिता के अमृत पुत्र हैं। हमारे लिए पिता का उपदेश है कि इस मानव-समाज मे कोई भी बडा नहीं। और न कोई छोटा है। इसलिए सब एक जैसे भाई हैं। ईश्वर के सामने कोई बडा छोटा नहीं, सब बराबर हैं। अतः उन्नति के लिए सब बराबर यत्न करते रहें।

अन्त मे मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि सब के हृदय

शुद्ध हों, परस्पर सहानुभूति पूर्ण व्यवहार व वर्ताव करें। किसी का किसी से द्वेष न हो। सब के हृदय पटल पर उक्त वेद के सदुपदेश अंकित हों। और सब बहिनों व भाईयो का वेदानुसार आचरण हो, ऐसी सदा कृपा करते रहें। इत्योम्।

ओ३म्। द्यौः शान्तिरन्तरिक्षंँ शान्तिः पृथिवी शान्ति-
रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः
शान्ति र्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वंँ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।
ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(इसके बाद गृहपति ने सब का धन्यवाद किया। मिष्टान्न बाटने के बाद सत्संग समाप्त.)

पण्डित—भाईयो! ठहरो, ठहरो! एक सूचना सुन लीजिए। कल मा० सोहन लाल जी के सुपुत्र का देहान्त हो गया है। उसके लिए शोक प्रस्ताव स्वीकार करें।

सब लोग—स्वीकार है। (खड़े होकर और गायत्री मंत्र बोल कर)।

पण्डित—मा० सोहनलाल जी ने ६००) दान किया है। जिस मे से १००) हमारी समाज को, २५०) वेद प्रचारादि मे मिला है। अब आप स्वेच्छानुसार जा सकते हैं—

(सब का स्व २ स्थान को प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

मेरे आचार्य का वैदिक मत से अगाध प्रेम

वह चाहते थे कि समस्त संसार मे सत्य सनातन वैदिक मत का ही प्रचार हो। सब मतावलम्बी इसी मत को ग्रहण करें। क्योकि इससे उत्तम मत अन्य नहीं है। ज़रा देखिये सत्यार्थ प्रकाश में क्या लिखा है—

१. प्रश्न—तुम्हारा मत क्या है ?

उत्तर—वेद, अर्थात् जो जो वेद में करने और छोडने की शिक्षा की है उस उस का हम यथावत् करना छोडना मानते हैं। जिस लिए वेद हम को मान्य है इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों को, एकमत होकर रहना चाहिए। (स० प्र० ३ समु० पृ० ४४, २०वीं बार)

२ जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है। (पृ० ४७)

३ जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिए वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए। और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना चाहिए कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उस को मानते हैं। (पृ० १३१)

४. भला अब लो जो हुआ सो हुआ परन्तु अब तो अपनी मिथ्या प्रपंचादि बुराईयों को छोडो। और सुन्दर ईश्वरोक्त

वेदविहित सुपथ में आकर अपने मनुष्य रूपी जन्म को सफल कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुष्टय फलों को प्राप्त होकर आनन्द भोगो। (गुसाईयों से) (पृ० २३६)

५. देख! जिस बात में ये सहस्र एक मत हों वह वेद मत ग्राह्य है। और जिस में परस्पर विरोध हो, वह कल्पित, झूठा अधर्म अग्राह्य है। (एक जिज्ञासु से) (पृ० २५१)

६. हां यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न सुना न देखा, क्या करें ? जो सुनने और देखने में आवे तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदाय वाले वेद मत में आ जाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का बखेड़ा बहुत सा हटा दिया है। जैसे इसको हटाया वैसे विषयासक्ति दुरभिमान को भी हटा कर वेद मत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात हो। (सिक्खों से) (पृ० २३४)

७. इसलिए वेदादि विद्या का पढ़ना, सत्संग करना होता है, जिससे कोई इसको ठगाई में न फंसा सके, औरों को भी बचा सके। (पृ० २५५)

८. पक्षपातरहित वेद मार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। (पृ० २५४)

९. अब कहिये जो चारवाक आदि ने वेदादि सत्य शास्त्र देखे पढ़े व सुने होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते कि वेद, भांड, धूर्त और निशाचरवत् पुरुषों ने बनाए हैं। ऐसा वचन कभी न निकालते। हां भाण्ड धूर्त निशाचरवत् महीधर आदि टीकाकार हुए हैं उनकी धूर्तता है। वेदों की नहीं। परन्तु शोक

है चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को भी न सुना न देखा और न किसी विद्वान् से पढ़ा। इसलिए नष्ट भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदों की निन्दा करने लगे। दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाणशून्य कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देखकर वेदों से विरोधी होकर अविद्या रूपी अगाध समुद्र में जा गिरे। (पृ० २६४)

१०. इसलिए मनुष्यमात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है। (२६४)

११. जो चारवाक आदि वेदों का मूलार्थ विचारते तो झूठी टीकाओं को देखकर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते। क्या करें बेचारे 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः' जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की उलटी बुद्धि हो जाती है। (पृ० २६४)

१२. ऐसी ही इन की लीला वेद ईश्वर को न मानने से हुई। अब भी सुख चाहें तो वेद ईश्वर का आश्रय लेकर अपना जन्म सफल करें। (जैनियों से) (पृ० २६७)

१३. जो अविद्यादि दोषों से छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का आश्रय ले लो। क्यों भ्रम में पड़े २ ठोकरें खाते हो। (जैनियों से) (पृ० २७५)

१४. इसलिए जैनियों को उचित है कि अपनी विद्याविरुद्ध मिथ्या बातें छोड़ वेदोक्त सत्य बातों का ग्रहण करें तो उनके लिए बड़े कल्याण की बात है। (पृ० २८३)

१५. यह सच है कि बिना वेदों के यथार्थ अर्थबोध के मुक्ति के स्वरूप को कभी नहीं जान सकते। (जैनी लोग) (पृ० २६२)

१६. आप लोगो का बड़ा भाग्य है कि वेदमतानुयायी सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रन्थो के अध्ययन से ठीक ठीक भूगोल खगोल विदित हुए। जो कहीं जैन के महा अन्धेर मे होते, तो जन्म भर अन्धेर में रहते जैसे कि जैनी लोग आजकल हैं।
(पृ० ३००)

१७. जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिन में असत्य कुछ भी नहीं, तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। (ब्रह्मसमाज से) (पृ० २४७)

१८. भला वेदादि सत्य शास्त्रो के माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो ? (ब्रह्मो समाज से) (पृ० २४७)

१९. अब भी समझ कर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। (ब्रह्मो समाज से) (पृ० २४७)

२०. जब वृद्धि के कारण वेदादि सत्यशास्त्रों का पठन पाठन ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। (पृ० २५४)

२१ प्र०—पुराणो में सब बाते झूठी हैं व कोई सच्ची भी है ?

उत्तर—बहुत सी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षर न्याय से सच्ची भी है। जो सच्ची हैं वह वेदादि सत्यशास्त्रो की। और जो झूठी हैं वह इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं। (पृ० २१३)

२२. जो २ ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। (पौराणिक से) (पृ० २०२)

२३. ब्रह्मा से लेकर जैमिनी महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल का ही आचरण करना धर्म

है। क्यों ? वेद सत्यार्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेद विरुद्ध होने से झूठे हैं। (पृ० २०२)

२४ सुनो इसाई लोगो ! अब तो इस जंगली मत को छोड के सुसभ्य धर्ममय वेद मत को स्वीकार करो, कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो। (पृ० ३२०)

२५. जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसा ही बाईबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता। किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार मे गृहीत होता ही है। (पृ० ३४३)

२६. (कल्पित स्वर्ग पर) बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिए सब आर्यों ने तिलाजलि देदी है। ऐसा बखेडा ईसाइयो के सिर पर से भी सर्व शक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो। (पृ० ३३८)

२७. यह लोग (ईसाई) जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढा और न सुना उन बिचारे भोले भाले मनुष्यो को अपने जाल मे फंसा के उसके मा बाप कुटुम्बादि से पृथक् कर देते हैं। इस से सब विद्वानार्यों को उचित है कि स्वय उनके भ्रमजाल से बच कर अन्य अपने भोले भाईयो के बचाने मे तत्पर रहें। (पृ० ३२४)

२८. हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों मे अच्छे हैं। बाकी वाद-विवाद, ईर्ष्या द्वेष, मिथ्या भाषणादि कर्म सब मतों मे बुरे हैं। यदि तुम को सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो। (मुसलमानो से) (पृ० ३८६)

२६. जो कुछ इस में (कुरान मे) थोडा सा सत्य है वह वेदादि

विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है, वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके बिना जो कुछ इसमें है वह सब अविद्या, भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बना कर शांति भंग कराके उपद्रव मचा मनुष्यों में विद्रोह फैला परस्पर दुःखोन्नति करने वाला विषय है। (पृ० ३८८)

३०. ऐसे २ पुस्तक, ऐसे २ पैगम्बर, ऐसे २ खुदा और ऐसे २ मतों से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं। ऐसों का न होना अच्छा। ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रहकर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिए। क्योंकि उसमें असत्य किंचिन्मात्र भी नहीं है। (पृ०३६०)

३१. ऐसे मूढ प्रकल्पित मतों को छोड़कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिए है, कि जिस में आर्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है, सर्वोत्तम है। (पृ० ३६०)

३२. हा जो हम लोग वैदिक हैं, वैसे तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुत परस्ती आदि बुराईयों से बच सको अन्यथा नहीं। (मुसल्मानों से) (पृ० ३५३)

३३. परमात्मा मुसल्मानों पर कृपा दृष्टि करें जिस से यह लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्तें। (पृ० ३८४)

आचार्य की दृढ़ धारणा

१. यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेद मत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था। क्योंकि वेदोक्त सब बातें

विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ। इन की अप्रवृत्ति से अविद्यान्धकार के भूगोल मे विस्तृत होने से मनुष्यो की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन मे जैसा आया वैसा मत चलाया।"
(उत्तरार्ध की अनुभूमिका) (पृ० १७५)

२. देखो! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले आपस में वैर विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान, गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया। उसी समय से भोजनादि मे बखेडा हो गया। ...... क्यो कि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था। उसी मे सब की निष्ठा थी। और एक दूसरे का सुख दुःख, हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे तभी भूगोल मे सुख था। अब तो बहुत से मतवाले होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ गया है। इसका निवारण बुद्धिमानों का काम है। (पृ० १३७३। ७४)

३ जब बड़े २ विद्वान् राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि, लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गए और बहुत से मर गए तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या द्वेष अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड खण्ड राज्य हो गया, इत्यादि। (पृ० १७६)

आचार्य की परमात्मा से प्रार्थना

१. परमात्मा सब के मन मे सत्य मत का ऐसा अकुर डाले कि जिस से मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हो। इस में सब

विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें। (पृ० १५४)

२. सर्व शक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे। (पृ० १५५)

३. परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब से सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना व दूसरे मतमतान्तरों का दोष, पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूं इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि-परस्पर का विरोध छूट मेल हो कर आनन्द में एक मत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो। (पृ० ३८८)

आचार्य की सब मत वालों से अपील

इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' से मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए। नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन मन धन से सब जनें मिल कर प्रीति से करें।

इसलिए जैसा आर्य समाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है। क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं।

(स० प्र० ११ समु० पृ० २४६)

शमिति

(८ वां प्रकरण समाप्त)

नवम प्रकरण

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज

(नेताओं की दृष्टि में)

१. महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य उनकी विचार स्वतंत्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उन की कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

(गान्धी)

२. स्वामी दयानन्द केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनिया भर के लिए पूज्य हैं।

(कस्तूरा बाई)

३. स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को एकमात्र अपना गुरु माना है।

(लाजपतराय)

४. स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वह धार्मिक विश्वासों पर अटल रहे।

(एस. एल, पोलक)

५ स्वामी दयानन्द नवीन युग के पथप्रदर्शकों में से एक हैं। यदि उन्हें इस गणना में सर्वोच्च स्थान दें तो लेशमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी।

(राजा दुर्गानारायण सिंह)

६ ऋषि ने वेदों को देश मन्दिरों के छिपे हुए कोनों में से निकाल

कर उन्हें मनुष्य मात्र की पूजा के लिए रख दिया है।

(दादा खापर्डे)

७. मैं स्वामी जी को हिन्दु जाति का रक्षक मानता हूं। उन्होंने गिरती हुई जाति को बचा लिया, लोगो की आखें खोल दीं।

(राजा मोतिचन्द)

८. जिसे स्वामी दयानन्द ने सत्य समझा, उसे स्वतंत्रतापूर्वक स्वीकार किया, जिसे निकृष्ट और मिथ्या समझा उसे निर्भयता पूर्वक सबके सामने रख दिया।

(रेवरेण्ड टी. डी. सले)

९. स्वामी दयानन्द जैसे परमोदार पर संकीर्णता का दोष लगाना भ्रमात्मक और अयुक्त है। मैं आर्यसमाज को आदरणीय समझ उसे पूज्य दृष्टि से देखता हूं।

(एन. सी. केलकर)

१० स्वामी दयानन्द ने हिन्दू-युवको के हृदय में त्याग, परोपकार और देश भक्ति की ज्योति जगा दी। हिन्दू-जाति को जो धर्म-शिक्षा इस समय मिली है, उसका सारा श्रेय स्वामी जी को है।

(ला० हरदयाल एम. ए.)

११. इस युग में देववाणी का उद्धार स्वामी जी ने ही किया है। इस से भारतवर्ष में क्रांति हो रही है।

(शिवकुमार शास्त्री)

१२ स्वामी दयानन्द विचित्र प्रतिभाशाली पुरुष थे। हिन्दु समाज में विशेषकर उत्तरीय भारत मे समस्त जागृति का श्रेय उनको है।

(लो० तिलक)

१३. ऋषि दयानन्द ने हिन्दू-जाति की हड्डियों में नई आत्मा फूंक दी। (हृदयनाथ कुंजरू)

१४. यदि स्वामी दयानन्द हिन्दू जाति की रक्षा न करते तो वह पचास वर्ष में अस्तित्व से मिट जाती।

(सर हरिसिंह गौड़)

१५ वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान् साहित्य का पुतला, वेदों के महत्व को समझने वाला, अत्यन्त प्रबल नैयायिक यदि भारतवर्ष में हुआ है तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था।

(डा० स्टाक डी डी. शिकागो)

१६ यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य के अनन्तर भारत में स्वामी दयानन्द से अधिक संस्कृत का विद्वान्, उनसे बढ़कर प्रत्येक बुराई को उखाड़ने वाला, उनसे अधिक कथन शक्ति-शाली तथा दार्शनिक उत्पन्न नहीं हुआ।

(मेडम ब्लैवटस्की)

१७. वेदों के विषय में स्वामी जी का मत कितना ग्राह्य है, मैं कह नहीं सकता, किन्तु मैं उनको सब से श्रेष्ठ समाज-सुधारक मानता हूं।

(गोपाल कृष्ण गोखले)

१८ स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे, जो अनेक देशों के धार्मिक साहित्य से पूर्ण अभिज्ञ थे। उनके धर्म-नियमों की नींव ईश्वर कृत वेदों पर थी। उनको वेद कण्ठाग्र थे। उनके मन व मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था।

(प्रो० मोक्षमूलर)

१९. वेदों के भाष्य के विषय में हमें विश्वास है कि अन्तिम सर्वांग पूर्ण भाष्य चाहे जो हो परन्तु वेद-भाष्य की सच्ची चाबी के आविष्कर्त्ताओं में श्री स्वामी दयानन्द जी को सब से प्रथम मान दिया जायगा।

(योगी अरविन्द घोष)

२०. स्वामी दयानन्द मृत्यु पर्यन्त निर्भय रहे और जब मृत्यु आई तो उन्होंने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। वह प्रसन्नता पूर्वक चोटों के सहने पर किसी दूसरे को चोट पहुँचाने से घृणा करते थे।

(दीनबन्धु एण्ड्र्यूज)

२१. निःसन्देह स्वामी जी एक महान् पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान् , उत्कृष्ट साहस और स्वालम्बन से युक्त तथा मनुष्यों के नेता थे।

(कर्नल अल्काट)

२२ स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह राष्ट्र को पुनर्जीवित करने वाले थे।

(पाल रिचर्ड)

२३. महर्षि दयानन्द ने अपने विद्याबल, कर्मबल और तपोबल से सारी निर्बलताओं, अकर्मण्यताओं और बुराइयों को दूर कर दिया। हिन्दुओं को सच्चा और वेदानुयायी बनाया।

(वीर मुहम्मद यूनिस)

२४. मिथ्या ढकोसले को जो हिन्दू जाति में विद्यमान था, स्वामी दयानन्द के स्थापित आर्यसमाज ने नितान्त हटा दिया।

(हसरत मुहानी)

२५. आर्य समाज ने हमारी मातृ भूमि के उद्धार के लिए बहुत कुछ किया है । अत एव वह हमारी चिरकृतज्ञता का पात्र है । (डा० पी० सी० राय)

२६. पजाब में जितने समाज हैं उन सब में आर्यसमाज सर्वोत्कृष्ट है । उसका सगठन बडा उत्तम है । वह राजनैतिक संस्था नहीं, अपितु धार्मिक समाज है ।

(सर एडवर्ड डगलस मैक्लेगन भू. पू. गवर्नर पंजाब)

२७ समय आयगा कि जब बर्लिन, लण्डन और न्यूयार्क मे दयानन्द के बुत बनेंगे, जब रोम मे पोप के महल पर ओ३म् का झण्डा लहरायेगा, और मक्का में हवनयज्ञ होगे । दयानन्द की शिक्षा का प्रभाव समस्त राष्ट्र अनुभव कर रहे हैं ।

(आचार्य रामदेव)

२८. इतिहास में स्वामी जी का नाम महान् सुधारको की पवित्र श्रेणी मे सोने के अक्षरों में लिखा जायगा ।

(हरदयाल ऐम. ए.)

२९. ऋषि दयानन्द की पुश्त पर भारत के प्राचीन ऋषियो की सहायता अथवा आत्मिक शक्ति थी ।

(भाई परमानन्द ऐम ए.)

३०. जब भारतवर्ष में स्वराज्य मन्दिर का निर्माण होगा, तब उसमें ऋषि दयानन्द की मूर्ति सब से ऊँचे स्थान पर स्थापित होगी । (डा० ऐनी बिसेण्ट)

३१. मुझे स्वामी दयानन्द के आदर्शों पर पूर्ण रूप से इत्तफाक है । और मैं उनका जबर्दस्त अनुयायी हूं ।

(वी. जे. पटेल)

३२. मेरे शिष्यों में तुम ही हो जो वेदों के गिरे हुए झण्डे को संसार भर में ऊँचा उठा सकते हो। (गुरु विरजानन्द)

३३. स्वामी दयानन्द जी महापुरुष थे। यती, व्रती, गमी, दमी थे। (भीमसेन इटावा)

३४. श्री स्वामी जी ने इस अन्ध-श्रद्धा के युग में 'तर्क' का प्रवेश करा दिया, जिससे संसार चकित है। (दर्शनानन्द सरस्वती)

३५. ऋषि दयानन्द के ही उपदेशों से मेरे अन्दर आस्तिकता और वैदिक धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हुई...आर्य समाज के लिए ही मेरा जीवन और सर्वस्व अर्पण है। (श्रद्धानन्द संन्यासी)

३६. स्वामी दयानन्द एक महापुरुष थे, इसमें कोई सन्देह नहीं— स्वा. दयानन्द के उपदेशों के सन्मुख शिर झुकाना पड़ेगा। (मंगलदेव शास्त्री P, H. D)

३७. मेरे लिये स्वामी दयानन्द आर्यावर्त्त का पथ प्रदर्शक, भारतीयता का आदर्श, प्रभात का सन्देश और भविष्य का अग्रगन्ता था। (साधु वास्वानी)

३८. मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आत्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा। (कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू)

३९. स्वामी दयानन्द जी पर संकीर्णता का दोष भ्रमात्मक और गलत है। मैं उन लोगों में से हूं जो आर्यसमाज को आदरणीय और पूजनीय दृष्टि से देखते हैं।

(नरसिंह चिन्तामणी पूना)

४०. महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च-आत्माओं में से हैं जिनका नाम इतिहास में विशेषतया भारत के इतिहासाकाश मे सदा के लिए एक चमकते हुए सितारे की तरह प्रकाशित रहेगा।

(खदीजाबेगम ऐम. ए.)

४१. स्वामी दयानन्द बड़े सुवक्ता महान् तार्किक और पूर्ण उत्साही पुरुष थे। स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थो मे 'सत्यार्थ प्रकाश' सर्वोत्तम ग्रन्थ है। (श्रीमती जोज़ेफाइन)

आर्यसमाज के दस नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

(स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने स्वयं ये नियम बनाये थे।)